मुक्तं वन्दे जगदगुरूम्

सहज वरदान

(श्री रामचरित मानस के आधार पर)

{मुक्तानुभुति}

सोइ सुख,सोइ गति,सोइ भगति, सोइ निज चरण सनेहु।

सोइ विवेक,सोइ रहनि प्रभु, हमहिं कृपा करि देहु।।

दो शब्द

।। भगवत प्रेमी जनों।।

श्री सदगुरूदेव महर्षि मुक्त जी महाशिव के श्री मुख द्वारा मध्यप्रदेश के दुर्ग जिले के,दुर्ग बालोद रोड पर उमरादाह से पूर्व दिशा में चार मील की दूरी स्थित 'डंगारी' नामक ग्राम में श्री रामचरितमानस पर दिनाँक **1** मार्च **1972** से **7** मार्च **1972** तक साप्ताहिक प्रवचन हुए। उक्त साप्ताहिक अध्यात्मिक ज्ञान यज्ञ में श्री रामचरितमानस के अर्न्गत माता शतरूपा ने भगवान से जो वरदान मांगा था कि–

सोइ सुख,सोइ गति,सोइ भगति, सोइ निज चरण सनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु,हमहिं कृपा करि देहु।।

यह संकलित पुस्तिका इसी एक दोहे की ही सात दिनों तक आध्यात्मिक व्याख्या हुई जिसमें उसी प्रवचन का अंश हैं जिसमें तत्व का विमल और विशद विवेचन हैं। आशा है भगवत प्रेमीजन इससे लाभान्वित होंगें।

विनित
"दीन"

विषय सूची :–

1. सोइ सुख
2. सोइ गति
3. सोइ भगति
4. सोइ निज चरण सनेहु

5. सोइ विवेक

6. सोइ रहनि

सतरूपहिं बिलोकि कर जोरें, देबि मागु बरू जो रूचि तोरें।।

तब माता शतरूपा कहती है कि हे प्रभु। राजा ने जो वर मांगा वह मुझे बड़ा प्रिय लगा परन्तु हे नाथ मेरी एक ठिठाई है यद्यपि हे भक्तों के हित करने वाले प्रभु वह ठिठाई भीं आपको अच्छी ही लगती है आप ब्रह्मा आदि के भी उन्पन्न करने वाले जगत के स्वामी और सबके हृदय के भीतर के जानने वाले ब्रह्म हैं।

जे निज भगत नाथ तब अहहीं, जो सुख पावहीं जो गति लहहीं।।

हे नाथ मैं तो यह मांगती हूँ कि आपके जो निज जन हैं वे जो सुख पाते हैं और जिस गति को प्राप्त होते हैं, हे प्रभु–

सोइ सुख,सोइ गति,सोइ भगति, सोइ निज चरण सनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, हमहिं कृपा करे देहु।।

वही सुख,वही गति,वही भगति,वही निज चरण सनेह वही विवेक और वही रहनि हमें कृपा करके दीजिए। इस तरह माता शतरूपा ने छः बाते माँगी माता की यह वर याचना बड़ी विलक्षण और मार्मिक है तथा गूढ़ रूचिर है–

सुनि मृदु गूढ़ रूचिर बर रचना, कृपासिन्धु बोले मृदु बचना।।

तो भैय्या। अब इसकी विशद व्याख्या होगी माता शतरूपा ने कौन सा सुख, कौन सी गति, कौन सी भगति, कैसा चरण सनेह, कैसा विवेक और कैसी रहनि, यह कुछ नहीं बताया अब क्रमशः इन्ही छःदो बातो पर प्रकाश डाला जायगा,माताजी का लक्ष समझोः–

"सोइ सुख" अर्थात् कौन सा सुख?

जिस सुख को प्राप्त करने के लिएः–

योगी यतन करहिं जेहि लागी,भूपराज तजि होंहि बिरागी।।

माता वह सुख मांग रही है। अनादि काल से समस्त संसार का प्राणी वर्ग नाना प्रकार के विषयों में भटक रहा है,

कबहूँ मन विश्राम न मान्यो।
निशि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख,
जहँ तहँ इन्द्रिन तान्यो।।
जदपि विषय संग सहयो दुसह दुख,
विषम जाल अरूझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममताबस,
जानत हूँ नहिं जान्यो।।

विनय पत्रिका में गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि अरे मन। तूने कभी विश्राम नहीं लिया। अपने सहज सुख स्वरूप को भूलकर दिन रात इन्द्रियों का खींचा हुआ जहाँ तहाँ विषयों में भटक रहा हैं। यद्यपि विषयों के संग से तूने असझ संकट सहे हैं और तूने कठिन जाल में फंस गया है तो भी हे मूर्ख। तू ममता के अधीन होकर उन्हे नहीं छोड़ता और इसको जानते हुए भी तू अनजान

बना हुआ है।

जनम अनेक किये जाना विधि,

करम कीच चित सान्यो।

होइ न विमल विवेक नीर बिनु,

वेद पुरान बखान्यों।।

अनेक जन्मों में नाना प्रकार के कर्म करके तू उन्हीं के कीचड़ में सन गया है। है चित्त। बिना निर्मल विवेक रूपी जल के यह कीचड़ कभी साफ नहीं हो सकता ऐसा वेद पुराण कहते है।

निज हित नाथ पिता गुरू हरि सों,हरषि हृदय नहिं आन्यो।

तुलसीदास कब तृषा जाइ,सर खनतहिं जन्म सिरान्यो।।

अपना कल्याण तो,परम प्रभु ,परमपिता,परम गुरू रूप हरि से है परन्तु तूने इनको दुलसकर हृदय में कभी धारण नहीं किया दिन रात विषयों के बटोरने में ही लगा रहा मानसकार कहते हैं,कि प्यासे की प्यास उस तालाब के पानी से क्या बुझ सकेगी जिसके खादते–खोदते ही जीवन अन्त हो जाता है।

<u>अब आ जावो प्रसंग परः–</u>

यदि क्षण प्रतिक्षण विषयों में मिलने वाला सुख होता तो "सोइ" शब्द यहाँ लाने की जरूरत नहीं होती इससे पता चलता है कि माता जी का लक्ष, कोई विलक्षण सुख, निरपेक्ष सुख, स्वाभाविक सुख सहज सुख से है,जो साधन जन्य नहीं है जिस तरह नदियाँ कब सुखी होती है, तभी नदियों का बहाव बन्द हो जाता है,व शान्त हो जाती है।

सरिता जल जल निधि महँ जाई,

होई अचल जिमि जिव हरि पाई।

उसी प्रकार आनन्द सागर भगवान आत्मा को पाकर ही मन रूपी नदी अचल और शान्त हो जाती है। "सोइ सुख" हमहिं कृपा करि देहु। समस्त प्राणी मात्र के जीवन का चरम लक्ष्य है,नित्यानन्द की प्राप्ति अर्थात् मैं नित्य चौबीसो घण्टों नित्य सुख पाता रहूँ। संसार का कोई भी प्राणी यह कभी पसन्द नहीं करेगा कि मैं तेरस घण्टे ओनसठ मिनट ओनसठ सेकण्ड सुख से रहूँ और सिर्फ एक सेकण्ड ही दुख भोग लूँ,ऐसा एक सेकण्ड के लिए भी दुख चाहने वाला विश्व में कोई नहीं मिलेगा,इससे सिद्ध हुआ कि प्रत्येक नित्य सुख की ही याद में प्रतिफल प्रत्यनशील है,इसी के प्राप्त के लिए ही सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्म किये जाते है। जब उसे नित्य सुख की प्राप्ति हो जायेगी तभी उसके सब प्रयत्नों साधनों का अन्त होगा यह नित्य सुख भगवान आत्मा ही है,सारा चराचर उसी की प्राप्ति के लिए नित्य प्रयत्नशील हैं। भगवान को प्राप्त कर नाशवान क्षणिक सुख,विषयानन्द,शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध विषयक आनन्द की कामना करना कोई बुद्धिमानी नहीं हैं। मनुष्य वृक्ष लगाता है फल मिलने के लिये। अरे। छाया तो उसके साथ ही मिल जाती है। इसी प्रकार भगवान आत्मा की प्राप्ति के बाद सांसारिक ऐश्वर्य,शौर्य,प्रतिभा आदि छाया तो उसके साथ ही अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। उसके लिए अलग से कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस नित्य सुख की प्राप्ति के बाद समस्त साधन समाप्त हो जाते हैं। सभी साधनों का अन्त हो जाता हैं और दुख तथा सुख दोनों का अस्तित्व ही खत्म हो जाता है। वह सुख माता शतरूपा माँग रही हैं। उसी सुख के लिए लोग नाना प्रकार के साधन पूजा पाठ ध्यान धारणा समाधि प्राणायाम प्रत्यहार आदि

करते हैं जिस सुख का फल दुख है उस सुख से मन सुखी होता है और जिस दुख का फल सुख है उस दुख मन दुखी होता है। वो वह सुख जो सुख और दुख दोनों से परे का सुख है जो अहंगम्य है मन गम्य नहीं है, वह सुख मुझे दीजिए माता शतरूपा ने यही सुख माँगा। वह सुख नित्य सुख है। बोध शून्य व्यक्ति इस सुख में शून्यता का अनुभव करता है। इन वचन कर्म द्वारा जितने भी शुभाशुभ कार्य होते हैं। वे सब अपने आप का कुछ मानकर ही होते है जिनका फल दुखानुभूति है मन वचन कर्म द्वारा होने वाले समस्त कार्य अपने आप "मैं" आत्मा को जब कुछ न मानकर होते है। अपने आप "मैं" आत्मा को कुछ न मानना ही तो "मैं" आत्मा हूँ और जो "मैं" आत्मा हूँ वही सुख दुख से परे का सुख हैं। वही सुख महारानी शतरूपा माँग रही हैं। अभी जो कथा सुन रहे हो तो अपने "मैं" आत्मा को कुछ मानकर सुन रहे हो?

उत्तर है– नहीं।

अब देखते हो तब अपने आपको कुछ मानकर देखते हो?

उत्तर मिलेगा– नहीं।

इसी तरह जितने भी कार्य या व्यवहार तुम करते हो अपने आपको कुछ मानकर करते हो?

उत्तर है– नहीं।

इस तरह कुछ न मानकर ही प्रत्येक नित्य अपना सारा कार्य कर रहा है। इस तरह वह नित्य स्वरूपस्थ ही है। किसी भी विषय के अनुभव काल में अनुभव कर्ता को विषयानुभूति की अनुभूति नहीं होती,बल्कि "अनुभूति" की अनुभूति ही होती है। अनुभूति ही तो "मैं" आत्मा हूँ तो सोइ सुख "हमहिं कृपा करि देहु" प्रश्न होता है विषयानुभूति क्यों नहीं होती?क्योंकि अनुभूति में विषयानुभूति का सर्वथा अभाव हैं। यहाँ अनुभूति का अर्थ स्वरूप है। स्वरूप देश में विषयों का सर्वथा अभाव है इसका क्या प्रमाण हैं कि यही अनुभूति ही आत्मदेव हैं?

उत्तर है– क्योंकि किसी भी विषय के अनुभव काल में अपने आप को कुछ न मानकर ही अनुभूति होती हैं। यही प्रमाण है कि अनुभूति में विषयानुभूति का सर्वथा अभाव हैं। इससे यह अनुभव हुआ,कि भूत भविष्यत और वर्तमान तीनों काल में न कुछ हुआ था,न हो रहा है और न कुछ होने वाला है। या तो "मैं"आत्मा हूँ तो "मैं" आत्मा और रहूँगा तो "मैं" आत्मा। माता शतरूपा कहती है कि सो सुख मुझे दीजिए। जब मैं आत्मा अपने आपको कुछ मानता हूँ तब शब्द स्पर्श,रूप,रस और गन्ध इन विषयों का विकल्प होता हैं परन्तु जब "मैं" आत्मा इसका अनुभव करने चलता हूँ। तब केवल अनुभूति ही अनुभूति ही रह जाती है। विषयों का अभाव रहता है। यहाँ पर यह नहीं भूलना चाहिए कि अपने आप "मैं" आत्मा को कुछ मान लेना यही जीव देश है और कुछ न मानना यही आत्म देश है। जीव देश में प्रपंच है और आत्मदेश में "मैं" भगवान आत्मा के सिवा कुछ नहीं हैं। यही सुख दुख से परे का सुख है। सो सुख दीजिए।

"मैं" जीव हूँ,इतना ही जीवदेश नहीं है। बल्कि मैं जीव हूँ के बीच में जो कुछ भी आ जाए अर्थात् मैं देह हूँ "मैं" जीव हूँ, मैं ब्रह्म हूँ,मैं भगवान हूँ आदि ही सभी जीवदेश ही है।

महारानी शतरूपा ने सोइ सुख, सोइ गति, सोइ भगति, सोइ निज चरण सनेह, सोइ विवेक सोइ रहनि माँगा है तो, सुख गति भगति,निज चरण सनेह,विवेक और रहनि इन सबके आगे "सहज" लगाओ अर्थात् सहज सुख सहज गति, सहज भगति, सहज चरण सनेह, सहज विवेक और सहज रहनी माता ने यही माँगा। सहज का अर्थ होता है। स्वाभाविक। कृत्रिम नहीं। जो सहज सुख है वह साधन जन्य नहीं है। कृपा जन्य है। तभी "कृपा करि देहु" कहा गया। कृत्रिम जो होता है। वह साधन जन्य होता है और अपना स्वरूप भगवान आत्मा जो है वह सहज है। सामान्य है।

व्यापक है। इस तरह सहज सुख "मैं" आत्मा का है। पर्याय है और जो कृत्रिम सुख है। वह आगमा पायी है। अनित्य है। उसका ही अनुभव होता है। वह कृत्रिम सुख है। सहज सुख है। वह "मैं" आत्मा हूँ।

बड़ा आनन्द आया तब,जब आया तब चला भी जाएगा। इसलिए वह साधन जन्य है। अनित्य है,वह कृत्रिम सुख है जिस सुख का पाकर मन सुखी हो जाता है। वह कृत्रिम सुख है और जिस सुख को पाकर मन अमन हो जाता है। वह सहज सुख में सुख दुख दोनों का अभाव रहता है। यही सहज सुख है।

प्रश्न होता है:— कि सहज सुख में मन नहीं रहता इसका क्या प्रमाण है?

उत्तर है :—लय और विक्षेप दोनों ही मन का स्वरूप है,अभी कथा के श्रवण काल में यदि मन रहेगा तो या तो वह विक्षिप्त रहेगा की लय रहेगा,तब इन दोनों स्थिति में कथा नहीं सुना जा सकता परन्तु सुन रहे हो,यही अमन अवस्था है। इस समय मन नाम की कोई चीज ही नहीं।

प्रश्न होता है :— क्या कारण है कि मन नहीं हैं?

उत्तर है :— "मैं" हूँ इसलिए मन नहीं है।

प्रश्न है :— क्या प्रमाण है कि "मैं" हूँ?

"मैं" हूँ,इसका यही प्रमाण है कि इस समय "मैं" जैसा हूँ,"वैसा" ही हूँ, जो हूँ, वही हूँ, जहाँ हूँ, वही हूँ, बिना मान्यता के हूँ, वाणी की क्या ताकत है कि वह इसे व्यक्त कर सके। इसका अनुभव मैं ही करता हूँ। जानना ही अनुभव करना है। क्योंकि "मैं" आत्मा ज्ञान स्वरूप हूँ। यदि मैं किसी उपकरण के द्वारा जानू तो "मैं" नहीं। क्योंकि किसी विषय को जानने के लिए "मैं" आत्मा ज्ञान स्वरूप को किसी उपकरण की आवश्यकता नहीं होती इसलिए "मैं" आत्मा का ज्ञान,सहज ज्ञान है। कृत्रिम नहीं,जानना ही जिसका स्वभाव है।

"सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म"

सुख—दुख से परे का जो सुख है वही सहज सुख है। "मैं हूँ" इस संज्ञानुभूति का भी अभाव है। जिस देश में,वह सहज पद,सहज समाधि,सहज सुख है। उसे वाणी जब रहे तब तो व्यक्त करे। परन्तु जब वाणी का ही अभाव हो गया,वाणी ही नहीं रही,तब व्यक्त कौन करे। यह सहज सुख है। यही प्रशान्त महासागर हैं। "मैं हूँ" इस संज्ञा की भी अनुभूति की आभावानुभूति,किसी विषय के अनुभव काल में ही होती है। यहाँ केवल सत्तामात्र ही रह जाता है। यही "सोइ सुख" माता शतरूपा ने माँगा था। "मैं हूँ" इस संज्ञा की ही जब अनूभुति नहीं है। तो फिर शब्दादिक विषयों की ही अनुभूति कहाँ होगी।

सो0:— रामस्वरूप तुम्हार,बचन अगोचर बुद्धिपर
अबिगत अकथ अपार,नेति नेति निज निगम कह।।

जब मैं स्वयं कहाँ हूँ,क्या हूँ,कैसा हूँ इसके कथन करने में भी समर्थ नहीं हूँ। तब वेद क्या कथन करेंगे। इसीलिए न इति,न इति कहकर वे वहाँ ये भाग जाते है। माता शतरूपा ने यही माँगा, क्यों न यह माँगे,राजा के पास जाकर भी क्या कौड़ी माँगे। अरे। यह तो राजा का अपमान करना है। जब भगवान से माँगा जा रहा हैं। तब तो भैय्या। यही माँगना सार्थक है। जब किसी से पूछा जाता

है कि तुम कौन हो तब वह कहता है कि मैं देह हूँ। मैं जीव हूँ। आदि तो क्या वह इसका माला जपता रहता है कि मैं देह हूँ। मैं जीव हूँ। आदि?

उत्तर है :– नहीं जपता रहता। तब इसका अर्थ हुआ कि वह बताने के समय ही मान लेता है। शेष समय वह जैसा का तैसा,जो का सोइ रहता है। तब वह अपने मन से ही वह देह ,जीव,ब्रह्म आदि मानता है। स्वयं बन्धन लगाया हुआ है। इसलिए उसे घबराहट नहीं होती,जब बाहर से कोई बन्धन लगाता, तब तो उसको घबराहट होती,जब स्वयं ही संकल लगाकर भीतर पड़ा है, तो जब इच्छा होगी टट्टी पेशाब जाना चाहेगा,तो आराम से खोलकर बाहर निकल सकता है। परन्तु यदि बाहर से तो कोई संकल लगा दे तब तो भैय्या। फिर चिल्लाहट शुरू हो जायेगी। उसे चैन नहीं मिल सकती। इस तरह सारा विश्व नित्य ही सहज पद में स्थित है। सहज को सहज समझा रहा है और सहज ही सहज को समझ रहा है। जीव सहज नहीं है। वह तो कृत्रिम है। वह क्या समझेगा। "मैं जीव हूँ" इसको भगवान आत्मा ने ही माना।
प्रश्न है :– जानकर मानता हैं या बिना जाने?
उत्तर है :– जानकर मानता है।
प्रश्न है :– जानकर क्यों मानता हैं?
अरे उसकी मर्जी,क्या भगवान भी किसी के बन्धन में है। उसके लिए कानून बनाने वाले तुम कौन हो? उसकी लीला है। उसकी इच्छा।
प्रश्न है :– मरने में डर क्यों लगता हैं?
उत्तर है :– अरे। कभी मरा नहीं,मरने की आदत नहीं,इसलिए उसे डर लगता है कि मरना क्या बला है। यह व्याख्या सहज पद से हो रही है।

देखने का तुमने क्या कभी अभ्यास किया है। सुनने का तुमने क्या कभी अभ्यास किया है। क्या किसी ने इसकी ट्रेनिंग दी है।
उत्तर :– नहीं। तब देखना सहज,सुनना सहज,बोलना सहज,चलना सहज सब सहज है। सहज पद की व्याख्या हो रही है। मन,वचन,कर्म द्वारा सारे व्यवहार,सहजावस्था में ही हो रहे है और सहज ही तो भगवान आत्मा "मैं" हूँ। सहज द्वारा सहजावस्था में ही सहज कर्म होते है। जब अवस्था सहज,कर्म,सहज तब करने वाला ही कब कृत्रिम है,वह भी सहज ही है इसलिए "सोइ सुख" हमहिं "कृपा करि देहु" अपने आप "मैं" आत्मा को कुछ मान लेने पर भी मुझ आत्मा का जो सहजपन है वह कहीं चला नहीं जाता,सहज का सहज ही रहता है। मान लेने पर तो (जो मैं मानता हूँ) वह मैं नहीं हो जाता,देह,जीव,ब्रह्म आदि नहीं हो जाता।
प्रश्न होता है :– इसका क्या प्रमाण हैं?
उत्तर है :– मानने से यदि मैं वह हो जाऊँ तो सदैव ही मैं, वह रहूँ परन्तु वैसा जैसा कि मैं मान लेता हूँ। नहीं रहता,यही इसका प्रभाव है। सुसुप्ति अवस्था में देह भाव, जीव भाव, ब्रह्म भाव आदि सर्व भावों का अभाव रहता है। वाणी द्वारा जो प्रगट किए जाएं। वह सहज नहीं देखने सुनने का कोई साधन बाल्य काल से आज तक नहीं किया। इसी लिए देखना सुनना सहज है, जिस अवस्था में से कर्म होते है। वह अवस्था भी सहज है। अपने को कुछ मानकर देखा सुना नहीं जाता। सुनते या देखते समय "मैं" हूँ इस संज्ञा का भी तो अभाव है। अतः देखने सुनने वाला भी सहज है। शेष सब कृत्रिम है। इस अवस्था में सुख दुख का अभाव है। ऐसा जो सुख वह सहज सुख है।

सहजानुभूति में सहज सुख की अनुभूति ही निहित है। उसका अनुभव कर लेने पर ही सहज सुख की अनुभूति होती है।

देह भाव,जीव भाव,ब्रह्म भाव आदि सर्व भावों के अभाव के भाव में जो हो वही रहो,जैसे हो वैसे ही रहो,जहाँ हो वही रहो। बस अब जो अनुभूति हो रही है। वहीं सहजावस्था है। सहज हैं। "मैं" आत्मा है,इस अनुभूति में देश,काल,वस्तु,सुख,दुख सर्व का अभाव यही सहज सुख है। शतरूपा कह रही है कि :–

"हमहिं कृपा करि देहु"

यही सोइ सुख है जिसे माताजी ने माँगा है इसके बाद उनने "सोइ गति" कहा है। अब गति सुना– श्रुति आई है–

यथा नद्यःस्यन्द माना समुद्रे, अस्तंगच्छन्ति नाम रूपे बिहाय।
तथा विद्वान्नाम रूपाद्धि मुक्तः, परात्परं पुरूषभुवैनि दिव्यम्।।

जिस प्रकार नदियाँ समुद्र को प्राप्त कर अपने नाम रूप का परित्याग कर समुद्र हो जाती है उसी प्रकार विद्वान विवेकी पुरूष नाम रूप का परित्याग कर परात्पर सच्चिदानन्द आत्मा हो जाता है। प्रश्न होता है कि :– नदियाँ समुद्र को प्राप्त करके नाम रूप का त्याग करती है या समुद्र को प्राप्त करने के पहिले त्याग करती है?

उत्तर है :– समुद्र को प्राप्त करने के बाद नाम रूप का त्याग करती है परन्तु श्रुति कहती है कि 'नाम रूपै बिहाय'।

गंगा,यमुना,ब्रह्मपुत्र आदि नाम है और इनका बहाव (प्रवाह) जो हैं वह है। उनका रूप समुद्र में मिलते ही उन दोनों का अर्थात् नाम और रूप का त्याग हो जाता है। जब नाम रूप का त्याग हो गया,तब अब नदी ही न रही। नाम और रूप ही तो नदी थी, जब नदी ही न रही, तब प्राप्त किसने किया। प्राप्त किसको किया? प्राप्त कौन किया। जब नदी ही समाप्त हो गई तब अतीत और वर्तमान की स्मृति ही कहाँ रही। दूसरी श्रुति आई है उसकी भी सुनाः–

रमाःसौम्य नद्यःपुरस्तात्प्राच्याः स्यन्दन्ते
पश्चात्प्रतीच्यस्ताः समुद्रात्समुद्र सेवा।
पियन्ति समुद्र एव भवति ता यथा तत्र न
विदुर्यहमस्मि महमस्मीति। (छन्दो. खण्ड 10)

नदियाँ पूर्व पश्चिम उत्तर–दक्षिण से बहकर जब समुद्र में जाती है और उसे प्राप्त कर लेती है। तब नदियों को यह स्मरण नहीं रहता कि आज के पहिले मैं गंगा थी। यमुना थी आदि और अब समुद्र हुई है और यदि यह याद है तो वह अभी मिली ही नहीं समुद्र में मिलने के बाद यदि उन्हे वहाँ ढूंढोगे तो इनका वहाँ नामो निशान नहीं मिलेगा। तब जब नदी ही न रही,तो समुद्र भी न रहा। समुद्र कहेगा कौन? (क्योंकि नदियों न ही तो मिल जुल कर अपने अपने लक्ष का नाम समुद्र रखा

था) अतः अब नहीं और समुद्र दोनों नहीं रहे इन दोनों के अभाव में अब जो रहा, वह न नदी है और न समुद्र है। बस यही नदियों की गति है। माताजी का कहना है कि "सोइ गति" हमहिं कृपा करि देहु।

देखो :– गति का अर्थ होता है। मोक्ष। तो समुद्र को पाकर ही मोक्ष होता है। नाम रूप का त्याग करना, यही मरना है, मरने के बाद ही मोक्ष मिलता है। नदी को अपनी स्मृति का अभाव ही नदी का अभाव है, नदी का मरना है, इसी तरह जीव का मोक्ष है। वह क्या है? उत्तर है– "मैं संसारी जीव हूँ" यह हो गया जीव का नाम और मैं आता हूँ, जाता हूँ, यह आवागमन ही हो गया रूप। पहिले मुझ आत्मा पर हुआ अध्यास,कि मैं जीव हूँ, तो जीवभाव में मुक्त नहीं होता। जीवभाव के अभाव में,जीव मुक्त होता है।

प्रश्न होता है कि– जीवभाव का अभाव जीवभाव में है या आत्मभाव में है?

उत्तर है :– आत्मभाव में हैं।

प्रश्न है :– आत्मभाव क्या हैं?

उत्तर है :– आज के पहिले मैं क्या था,अभी क्या हूँ, आगे क्या रहूँगा? भूत भविष्यत वर्तमान तीनों काल का अभाव ही आत्मभाव हैं। जैसे "मैं" पहिले था, वैसा ही अब हूँ और वैसा ही आगे रहूँगा, यही जीवभाव का अभाव है। यदि यह याद है कि आज के पहिले "मैं" जीव था,अब ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्म हुआ तो समझ लो,कि अभी परमानन्द स्वरूप भगवान को प्राप्त नहीं हुआ। जीव कि वास्तविक मुक्ति यही है कि जीव अपने आप अभाव ही, जीव की वास्तविक मुक्ति है। माताजी कहती है,कि "सोइ गति" हमहिं कृपा करि देहु।

मुक्ति का अर्थ है,छुटकारा। संसार में ऐसा कोई प्राणी नहीं है। जो बन्धन पसंद करे,मनुष्य तो क्या पशु पक्षी कीट पतंग आदि सभी बन्धन रहित अवस्था ही चाहते हैं। सभी मोक्ष चाहते है। सभी छुटकारा पाना चाहते है। "सहज गति अर्थात् स्वाभाविक मुक्त"। एक मुक्ति तो होती है। बन्ध की अपेक्षा से और दूसरी मुक्ति होती हैं वह स्वाभाविक मुक्ति है। पहली मुक्ति साधन से मिलती है। अपने आप को कुछ भी मानना यही बन्ध का स्वरूप है और अपने आप को जैसा हूँ वैसा ही जानना मोक्ष का स्वरूप है।

ब्रह्म :– पृथ्वी से लेकर आकाश पर्यन्त,तृण से लेकर ब्रह्म पर्यन्त जो अनिर्वचनीय है व्यापक है। चैतन्य स्वरूप है आनन्दघन है वह ब्रह्म हैं।

ईश्वर :– साक्षात ब्रह्म ही अपनी शक्ति प्रकृति के आश्रित होकर लोक लोकान्तरों की सृष्टि करके और सर्व में व्यापक होकर सारे चराचर पर जो शासन करता है। उसे ईश्वर कहते हैं।

जीव :– नाम रूपात्मक प्रपंच में जो ब्रह्म व्यापक है वही अपने आपको नाम रूप वाला मानकर भेद बुद्धि द्वारा अपने आपको जो नाना मानता हैं वह जीव है। अपने आप पर जीव की मान्यता में भेद और अनेकता,जीवदेश का अटल निधान हैं।

प्रकृति :– जो जगत का निर्माण पालन और संहार करती है,ऐसी जो ब्रह्म की शक्ति इसे प्रकृति कहते हैं। वह यह सब ब्रह्म की सत्ता से करती है।

परमात्मा :– देहादिक से परे,सनातन ब्रह्म है। परमात्मा है। वही विष्णु हैं। वही ब्रह्म है। वही शंकर है। वही सूर्य है। वही चन्द्रमा है। वही अक्षत्र तारागण है। वही देव है। वही दैत्य है। वही मनुष्य है। वही स्त्री है। वही पुरूष है। वही ब्राह्मण है। वही क्षत्री, वैश्य, शुद्र है। वही पशु, पक्षी, कीट, पतंग है। अरे। कहाँ तक कहे नही है, भिन्न जिससे कुछ,वह है, परमात्मा।

जाति :– न तो चमड़े की कोई जाति होती है। न रक्त की जाती होती है। न माँस की कोई जाति होती है और न ही आत्मा की ही कोई जाति होती है। यह तो केवल संसार में व्यवहार चलाने के लिए जाति की कल्पना कर ली गई है।

कर्म :– मन वचन और कर्म के द्वारा अध्यात्म निष्ठा से जो किया जाय वह कर्म है।

अध्यात्म निष्ठा :– सर्व कर्म ब्रह्म ही है। सर्व में ब्रह्म की भावना भी ब्रह्म, सर्व सामग्री ब्रह्म, यज्ञ भी ब्रह्म, कराने वाला भी ब्रह्म और करने वाला भी ब्रह्म ही है। यह है अध्यात्म निष्ठा।

अकर्म :– कर्तापने और भोक्तापने के अहंकार को लेकर दुख हृदय में फल की आशा रखकर जो कुछ किया जाय, वही अकर्म है।

ज्ञान :– देह और इन्द्रियों की शुद्धि करके पवित्र अन्तःकरण के साथ, हाथ में पत्र पुष्प और भेंट लेकर किसी श्रोत्रिय ब्रह्म निष्ठ के सम्मुख नम्रता पूर्वक उनकी शरण में जाकर उनके श्रीमुख द्वारा निकले हुए आत्म तत्व के उपदेश को श्रद्धा और विश्वास पूर्वक सुनकर जो हृदय में धारण किया जाता है। वह है ज्ञान।

अज्ञान :– रज्जू (रस्सी) के अज्ञान से अन्धकार के कारण रज्जू में सर्व की जैसी भ्रान्ति होती है। इसी प्रकार सारे चराचर में व्यापक "मैं"आत्मा के अज्ञान से नाना नाम रूप जो भासता है,स्त्री,पुरूष,कीट,पतंग,पशु,बन्ध,मोक्ष की कल्पना आदि जो कुछ भी मन वाणी का विषय है। सभी अज्ञान है। "स्व"–स्वरूप भगवान आत्मा के अज्ञान से "स्व"–स्वरूप का नाम भेद कल्पित जो ज्ञान वही अज्ञान है।

सुख :– सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान आत्मा को जानकर जो आनन्द स्वरूप में स्थित है। वही सुख है जिसको माता शतरूपा ने माँगा है।

दुख :– आत्मा के अतिरिक्त, अनात्म पदार्थ के मिलने की जो इच्छा है। यही दुख है। स्त्री,पुत्र,धन, कीर्ति,वैभव आदि ही अनात्म पदार्थ है।

बन्ध :– अनादि काल से अविद्या में पड़कर अपना जन्म–मरण मानना किसी देव अणिमा आदि सिद्धियों की कामना यही बन्ध है।

वर्णाश्रमी :– आश्रमी मानकर किये गये कर्म बन्ध है। तीर्थ,व्रत,यज्ञ,ज्ञान,दान,जप,तप आदि बन्धन है। हमको मोक्ष हो यह बन्धन है। कहाँ तक कहे संकल्प मात्र बन्धन है।

मोक्ष :– नित्यानित्य वस्तु का विचार करके स्वस्वरूप में स्थित होकर किसी प्रकार का भी संकल्प न करना यही मोक्ष है।

गुरू :– सारे चराचर में व्यापक चैतन्य स्वरूप जो आत्मा है, वही गुरू है।

शिष्य :– ज्ञान स्वरूप जो आत्मा है। वही शिष्य है।

विद्वान :– तृण से लेकर ब्रह्म पर्यन्त सारे चराचर में जो व्यापक है उसको जो जानता है। वही विद्वान है।

मूढ़ :– मैं कर्ता हूँ, भोक्ता हूँ, ऐसा जो मानता है, वही मूढ़ है।

आसुरी तप :– ब्रह्मा, विष्णु और महेश के ऐश्वर्य को देखकर उसकी कामना से जो कठोर तप करता है, वह तप ही आसुरी तप है।

शुद्ध तप :– उसी संकल्प रूपी बीज को प्रचण्ड ब्रह्माग्नि में जो तपावे वही शुद्ध तप है।

परम तद :– प्राण इन्द्रिय, अन्तःकरण सत,रज,तम आदि से जो पद है। वही परम पद है।

ग्राह्य :– देश काल वस्तु से परे जो चिन्मय 'स्व' स्वरूप है वही ग्राह्य है।

अग्राह्य :– 'स्व' स्वरूप भगवान आत्मा के अतिरिक्त इस लोक और परलोक की वस्तुओं का चिन्तन ही अग्राह्य है।

सन्यासी :– सब धर्मों को त्यागकर निर्मल निहंकार होकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरू के पास जाकर 'अहंब्रह्मास्मि', तत्वमसि, सर्व ब्रह्म, अयंमात्मा ब्रह्म इत्यादि महा–वाक्यों के द्वारा अपने 'स्व'स्वरूप भगवान आत्मा को निश्चय करके भगवान आत्मा में जो स्थित होकर जो स्वतंत्र विचरता है। वही सन्यासी है, वही योगी है। वही पूज्य है। वही पण्डित है। वही विद्वान है। वही परम हँस है। वही अवधूत है और वही ब्राह्मण है।

हृदय में जो अज्ञान की ग्रन्थि है उसके नाश का नाम है मोक्ष। माताजी की याचना सापेक्षित मोक्ष (गति) की नहीं है, उनकी याचना तो स्वाभाविक गति की है अर्थात् सहज गति की।

बन्धन यदि सत्य है तो उसकी निवृत्ति नहीं और यदि असत्य है तो वह है ही नहीं तो तुम छुटकारा किससे पाना चाहते हो? इसलिए ये बन्धन तीन काल में है ही नहीं। तब मोक्ष भी न रहा। अब इस ज्ञान में सहज गति है। यह साधन रहित सहज गति (सहजा मोक्ष) है। बन्ध के विकल्प का नाम ही बन्ध है और मोक्ष के विकल्प का नाम ही मोक्ष है। इन दोनों विकल्पों के अभाव का नाम सहज मोक्ष है।

प्रश्न होता है :– जो ब्रह्म ज्ञान है। अर्थात् जिस ज्ञान से अज्ञान का नाश होता है। वह सत्य है या असत्य है। यदि कहो सत्य हैं। तो सत्य तो एक ही है। भगवान आत्मा मैं, यदि कहो असत्य है। तो अज्ञान भी असत्य और वह ज्ञान–ज्ञान भी असत्य, तो असत्य से असत्य की निवृत्ति नहीं हो सकती। ब्रह्म जो इस असत्य ज्ञान से जाना गया, वह ब्रह्म सत्य है या असत्य? वह ब्रह्म तुमसे भिन्न था या अभिन्न? अथवा भिन्नाभिन्न?

उत्तर है :– न भिन्न था, न अभिन्न था और न भिन्ना–भिन्न था। जब जाना किसको, किसी को नहीं। कौन जाना? किसी ने नहीं, क्या जाना? कुछ भी नहीं। इस ज्ञान का जो निश्चय, इस अवस्था की जो स्थिति इसी गति के विषय में माताजी की याचना हो रही है।

जब "मैं"आत्मा अज्ञान तक को जानता हूँ। तब क्या नहीं जानता? अज्ञान माने न जानना और ज्ञान माने जानना इन दोनों को "मैं"जानता हूँ या नहीं?

उत्तर है :– जानता हूँ। तब किसको नहीं जानता स्वामी जी। "मैं" अपने आपको नहीं जानता कि मैं कैसा हूँ।

भाई। यदि तुम यह जानना चाहते हो, कि मैं ऐसा हूँ, तो वह तुम हो नहीं और यदि जैसा हूँ। जानना चाहते हो, तो फिर उसे तो तुम जानते ही हो, तब क्या नहीं जानते? सब जानते हो। इस बोध में अब अज्ञान नहीं रहा और अज्ञान नहीं तब ज्ञान भी नहीं, जब अज्ञान नहीं, तब बन्ध नहीं रहा और ज्ञान नहीं तब मोक्ष भी न रहा। इस तरह का जो निश्चय यही सहज गति है।

जिस देश में बन्ध है और मोक्ष दोनों का विकल्प न हो, वह स्वाभाविक (सहज) मुक्ति है। यदि कोई कहे कि मैं बद्ध हूँ। तो बाँधा किसने? और यदि कहता है कि मैं मुक्त हूँ। तो छुड़ाया किसने? क्योंकि जीव तो भैय्या।

"मायाईश न आपु कहँ, जानि कहिस सो जीव"

जो अपने को माया का ईश नहीं जानता वह जीव है। तो वह है कौन? जो अपने को माया का ईश नहीं जानता, तब जीव नाम पड़ा। जीव तो वह है नहीं,क्योंकि जब नहीं जानता तब जीव नाम पड़ता है और जानता है तब उसका नाम शिव पड़ता है। मगर वह है। कौन? अरे। वह जानने पर

और नहीं जानने पर शिव और जीव होता है। वह वही है। जो न जीव है। न शिव है। जो उसी में न बन्ध है। न मोक्ष है। बद्ध दशा में जीव है और मोक्ष दशा में शिव है और वास्तविक दशा में जीव है। न शिव है। ऐसा जो निश्चय है। वही सहज गति है।

अज्ञान है किसमें? अज्ञान है किसको? अज्ञान है किसका?
यदि कहो कि अपने आप का अज्ञान है। तो "मैं"हूँ इसका किसी को अज्ञान है। क्या जब इसका अज्ञान किसी को नहीं तब बन्धन कहाँ और जब बन्धन नहीं, तब बन्धन की अपेक्षा मोक्ष कहाँ? इन दोनों से जो मुक्ति है। उसका नाम है। सहज गति। माता शतरूपा ने ऐसा वर माँगा है कि उसे भगवान ही जाने। यही सहज गति है। जो लखाई जा रही है। सारा चराचर मुक्त ही मुक्त होता है। बद्ध, मुक्त नहीं होता। ब्रह्म ही ब्रह्म होता है। जीव ब्रह्म नहीं होता। यह निश्चय ही सहज गति है।

मुझ आत्मा में जानना पना जो धर्म हैं। उसे साधन द्वारा सीखना पड़ता है। या किसी के सिखाये पढ़ाये से जानना पना मुझमें आता हैं?
उत्तर हैं :– बिना किसी साधन के यह स्वाभाविक है, इसलिए यह सहज ज्ञान है। इस जानने पने में कभी कोई कमी नहीं होती, यह जानना पना आदि, मध्य, अन्त से रहित हैं।

ज्ञान अखण्ड एक सीतावर, मायावश जीव सचराचर।

यही सहज ज्ञान है। स्वाभाविक ज्ञान है। सन्त महात्माओं से यही ज्ञान प्राप्त होता है कि "मैं" आत्मा सर्वदा सर्वकाल में ज्ञान स्वरूप हूँ। इसका वे अनुभव करा देते है। जो बुद्धि जन्य ज्ञान होता है। वह कालान्तर में भूल जाता है। परन्तु जो सहज ज्ञान होता है। वह कभी विस्मरण नहीं होता। मन, बुद्धि, चित्त, इन्द्रियाँ इन सबो को थकावट आती है। परन्तु मुझ आत्मा के जानने पने में कभी थकावट नहीं आती। "जानना" जो है, यह तो क्रिया है तब भिन्न है। परन्तु ऐसा नहीं है, स्वभाव–स्वभावी से भिन्न नहीं हैं, देखना ही आँख हैं और आँख ही देखना है, देखना और आँख से दोनों भिन्न नहीं है। इस तरह जानना पना ही "मैं"हूँ।

यह जो अखण्ड ज्ञान है। वही तो राम है। सीतावर है और जहाँ तक मन वाणी का विषय हैं। वही सीता है, माया है।
प्रश्न होता है :– मायादेश का जानना न जानना क्या है?
उत्तर है :– अरे। मैं नहीं जानता, यही न जानना है और मैं जानता हूँ, यही जानना है। जानना तो है, कौन सा देश, काल, वस्तु है। जिसे नहीं जानता? "मैं" सबको जानता हूँ और नहीं जानने को भी जानता हूँ। इस तरह मै सबको जानता हूँ और जानकर कहता हूँ कि जानता हूँ। यही शिव है। इस तरह मुझ आत्मा में जानना न जानना कहाँ। इसलिए "मैं" आत्मा ही सहज गति हूँ।

जो सहज है। उसकी प्राप्ति भी सहज है और जो कृत्रिम है। उसकी प्राप्ति भी कृत्रिम है। वह किस तरह। सहज की अनुभूति करने के लिए इसी स्थिति में ठहर जाओ, जरा भी कृत्रिमता न आने दो, कुछ भी माना मत। अब जो हो, वही रहो, जहाँ हो वही रहो। जैसे हो वैसे ही रहो। इस स्थिति में निर्विकल्पता की जो अनुभूति हो रही है। जो विकल्पाभाव है। यही सहजावस्था है। सहज गति है, जिसकी प्राप्ति भी सहज ही है, जो किसी भी देश काल की अपेक्षा से रहित है, इसी लिये जो सहज है उसकी प्राप्ति भी सहज है। यह कृपा साध्य है। साधन साध्य नहीं है।

दुर्लभो विषय त्यागः, दुर्लभं तत्व दर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था, सद्गुरो करूणां बिना।।

अर्थात् जब तक विषयों का त्याग दुर्लभ तत्व का दर्शन दुर्लभ है, जब तक कि सदगुरू की कृपा न हों।

"गति" शब्द का विवेचन हो रहा है। इसमें सबकी गति हो रही है। ज्ञान की, अज्ञान की, मोक्ष की, बन्ध की। तो भैय्या। जहाँ सबकी गति हो जाये वही सहज गति है। चलते–चलते जीव थक जाते है। काम करते–करते हाथ थक जाते है। देखते–देखते आँखे थक जाती है। सुनते–सुनते कान थक जाते है। सोचते–सोचते बुद्धि थक जाती है। ऐसी ही चित्त थक जाता है। तभी तो आराम करना चाहता है। परन्तु आज दिन तक किसी से यह कहते नहीं सुना कि जानते–जानते मैं थक गया हूँ। वाह। धन्योऽस्मिहं। धन्योऽस्मिहं। धन्योऽस्मिहं।। मैं धन्य हूँ।मैं धन्य हूँ। मैं धन्य हूँ।

जब अज्ञान नहीं, तब बन्ध नहीं और जब ज्ञान नहीं। तब मोक्ष नहीं। यही कल्याणपद है, निर्वाणपद है, कैवल्यपद है और यही सहज प्रकाश है।

"सहज प्रकाश रूप भगवाना"

सहज ज्ञान ही भगवान है। सहज ज्ञान और भगवान दो भिन्न–भिन्न पदार्थ नहीं है। जो प्रकाश उदय अस्त वाला हो वह सहज प्रकाश नहीं हैं। अमेरिका और भारत का बारह घण्टे का अन्तर हैं और इंग्लैण्ड भारत का इस घण्टे का। अतः सूर्य का प्रकाश उदय अस्त वाला है। मगर यह प्रकाश उस प्रकार का उदय अस्त वाला प्रकाश नहीं है। सहज ज्ञान ही सहज प्रकाश है। जो तीनों काल और तीनों अवस्था में नित्य एक रस रहता है। वह "मैं" आत्मा ही हूँ।

देखो, छोटा सा बच्चा, चाहे वह एक ही दिन का क्यों न हो परन्तु उसमें जो "मैं" हूँ वह तो एक ही समान जानने वाला हैं। जो बूढ़े में, जवान में, पशु में, कीट, पतंग आदि सर्व प्राणिमात्र में है और जैसे वे सब जानते है।

छोटा बच्चा, वैसे ही देखता है। जैसे बूढ़ा जवान अथवा प्राणिमात्र देखता है। वैसे ही सुनता है। वैसे ही जानता है, अगर ज्ञान न हो, तो पेट दर्द का अनुभव कैसे करे,यही सहज ज्ञान है। वही "मैं" आत्मा भगवान हूँ आदि कुछ का भी विकल्प नहीं है। ।। सीतावर माने पति।।

अखण्ड ज्ञान स्वरूप "मैं" आत्मा वही है। राम और जो कुछ मन वाणी का विषय जहाँ तक है। वही है, सीता और इसको जो जानता है। वही है राम।

"राम अखण्ड एक सीतावर"

भैय्या! इसको कहते हैं, सहज ज्ञान। खूब समझ लो यहाँ सहज ज्ञान की अनुमति कराई जा रही है। "मैं नहीं जानता" इसको जानता हूँ या नहीं। जानता हूँ और मैं जानता हूँ। इसको जानता हूँ या नहीं। इसको भी जानता हूँ। तब जब जानने को जानता हूँ और नहीं जानने को भी जानता हूँ। तब क्या नहीं जानता? अब जानता हूँ। इस तरह जानने न जानने का तो सवाल ही न रहा।

इसलिए "मैं" आत्मा ज्ञान स्वरूप हूँ। यह जो सहज ज्ञान है। वह कृपा पर आधारित है। तभी माताजी कह रही है कि "हमहिं कृपा करि देहु"।
बड़े–बड़े विद्वान शास्त्रज्ञ,व्याकरणशास्त्र के ज्ञान के आधार पर 'ब्रह्म' का ज्ञान प्राप्त करते है। 'तत्वमसि' आदि महावाक्यों को बिना व्याकरण शास्त्र के ज्ञान के समझना कठिन हैं। परन्तु वह जो ब्रह्मज्ञान है जिसके लिए पढ़ने लिखने की जरूरत नहीं है। वृत्ति जन्य अनित्य ज्ञान है और "मैं" आत्मा भगवान नित्य ज्ञान, अखण्ड ज्ञान, सहज ज्ञान है। इसके लिए पढ़ने लिखने की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए विद्वान मूर्ख की आवश्यकता नहीं है। अवलम्बित है जहाँ विधि निषेध, अधिकारी, अनाधिकारी की जरूरत नहीं है।

गम्लृ–गता धातु से गति शब्द बनता है। गति के चार अर्थ होते है। गमन,ज्ञान,मोक्ष और प्राप्त। सहज मोक्ष उसको कहते है जो स्वाभाविक मोक्ष हो। ज्ञान प्राप्त करे तब मोक्ष है और आप ज्ञान प्राप्त न करे तब मोक्ष है। यदि आप ज्ञान प्राप्त किया तब मोक्ष हुआ है। तो कल संगदोष से ज्ञान के मिट जाने पर फिर अज्ञानी और बन्ध हो गया। तो भैय्या! ऐसे ज्ञान और मोक्ष को दूर से ही नमस्कार हैं। इसलिए सब मुक्त हो, भगवान आत्मा हो। ऐसा जो ज्ञान ऐसा जो निश्चय, ऐसा जो बोध ऐसी जो मुक्ति,यहाँ न प्रक्रिया है न सिद्धांत न ज्ञान है। न अज्ञान, जहाँ का तहाँ,जैसा का तैसा, जो का सोई बताया जा रहा है, अतः मस्त रहो। अरे मस्त तो हो ही, जो जिस काम में लगा है। वह उसी में मस्त है। अब इस सहजानुभूति से ही देखो, अपने सहज ज्ञान, सहज पद, सहज स्तर से देखो, जैसा "मैं" सहज ज्ञान स्वरूप हूँ, वैसे ही सब है। या मेरी अपेक्षा से कोई कम ज्यादा है?
उत्तर मिलेगा :– वैसे ही सब है। तो फिर कोई अज्ञानी है। न कोई बद्ध है, न मुक्त है,बस। यही नारायण पद हैं। यहाँ भगवान का प्रचार हो रहा है। यह सीधा सादा भगवान है और भगवान माने "ऐसा वैसा है" यह टेढ़ा मेढ़ा भगवान है।

नास्तिक, आस्तिक "मैं" ऐसा हूँ" इस टेढ़े मेढ़े भगवान को नहीं मानते मगर "मैं"हूँ, इस भगवान को क्या नास्तिक क्या आस्तिक जैन,बौद्ध,पन्थी,मजहवी,साम्प्रदायी,वर्णी,आश्रमी सभी मानते है। यह सार्वभौम भगवान है। यहाँ इसी का प्रचार है। व्यापक अखण्ड, अनन्त, अद्वैत, अपार इस प्रकार का भगवान सहज भगवान नहीं है। इसमें व्यापक किसको कहते है, अखण्ड किसको कहते है। अनन्त अपार अद्वैत किसे कहते है। इस तरह जब वाणी पैदा हो गई और "मैं" आत्मा भगवान जब वाणी का विषय नहीं हूँ। तब इसकी व्याख्या क्या होगी। अतः जैसा हूँ। वैसा ही हूँ। यहाँ सहज की व्याख्या हो रही है।

व्यापक अखण्ड अपार अद्वैत किसको कहते है। शास्त्र इसी का कथन करते है। इसी की व्याख्या है और वाणी इसी का कथन करती है। मगर जो वास्तविक भगवान है। उसको वाणी क्या कथन करेगी क्योंकि "राम अतर्क बुद्धिमन वाणी"।

प्रश्न है :– जो सहज है, उसकी प्राप्ति भी कैसे सहज है?
उत्तर है :– बस, यहीं ठहर जाओ, न आँख बन्द करो न कान बन्द करो टेढ़े रहो चाहे सीधे रहो। खड़े रहो चाहे बैठे रहो। जरा भी कृत्रिमता न आने दो। (कुछ क्षण मौन)। अब इसमें कोई विकल्प है। नहीं बस यही सहजावस्था है। इसमें क्या परिश्रम हैं। भैय्या। इस सहज पद में सदा स्थित हो जिसमें आँख कान बन्द करना पड़े, ऐसे वैसे बैठना पड़े, वह सहज पद नहीं है। हर अवस्था, हर काल, हर घड़ी जो एक रस रहे। वही सहजावस्था है।

प्रश्न :– तो स्वामी जी। ये बालक रो रहा हैं?
उत्तर :– भैय्या! यह पहले ही बताया जा चुका है कि वही भी "मैं" ही हूँ। क्या पत्थर बनना चाहते हो। लानत है ऐसे ज्ञान ध्यान को। ऐसी समाधि किसी काम की जिसमें भगवान आत्मा "मैं" की अनुभूति न हो। अरे। बालक रो रहा है। उसको मैं जानता हूँ या नहीं। इस सहजानन्द में तुम्हे वह आनन्द नहीं मिलेगा, जिसमें अहह कहते हो, इसमें अहह है न दुख है। सन्त महात्माजन इसमें स्थित नहीं कराते, स्थिति तो सदा हो ही, बल्कि इसकी अनुभूति कराते हैं।

क्योंजी। तुम ब्राह्मण हो,तो जब नहा धोकर कुश के आसन पर चन्दन चोवा लगाकर बैठते हो तभी ब्राह्मण होते हो, या हर हालत में ब्राह्मण हो?
उत्तर है :– हर हालत में ब्राह्मण हो। यही ब्राह्मण पने की सहजसमाधि है। चाहे सारे शरीर में टट्टी ही क्यों न लगी हो, ब्राह्मण ही हो। खाते हो तब ब्राह्मण, सोते हो तब ब्राह्मण, बैठे हो तब ब्राह्मण, हँसते हो तब ब्राह्मण, रोते हो तब ब्राह्मण, शौचालय में हो तब ब्राह्मण, पूजा घर में हो तब ब्राह्मण। यह ब्राह्मणपने की अखण्ड समाधि नित्य लगी है। बिना कुछ किये यह ब्राह्मण पने की सहज समाधि है। इसी तरह बिना कुछ साधन के "मैं" आत्मा की सहज समाधि, अखण्ड है जो सहज ही लगी हुई हैं। चुप रहूँ तब "मैं",बोलूं तब "मैं",जानूं तब "मैं",न जानूं तब "मैं",हँसूं तब "मैं", रोऊँ तब "मैं",जागूं तब "मैं",सोऊँ तब "मैं"। जब मुझ आत्मा भगवान से अन्य कुछ है ही नहीं, तब इन्द्रियाँ और वाणी का भी सर्वथा अत्यन्ताभाव है,यावानहं। मैं ही मैं रह गया,जो अहंगम्य हैं। यही देशकाल वस्तु आदि सबकी गति हो जाना यही सहज गति है। जिसे माताजी माँग रही हैं, इसलिए हर हालत में मस्त रहो।

दो0– सोइ सुख,सोइ गति,सोइ भगति। सोइ निज चरण सनेहु।।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु। हमहिं कृपा करि देहु।।

अब "सोइ भगति" पर सुनोः–

सहज भक्ति उसे कहते हैं जिसमें कुछ न करना पड़े। सहज रूप से भगवान की ही भक्ति हो सकती हैं,क्योंकि भगवान सहज हैं। सहज का अर्थ है– स्वाभावतः स्वाभाविक तो फिर उसकी भगति, चिन्तन, ध्यान, धारणा आदि सब सहज होगी। सहज की ही सहज भगति होती है। अन्य की नहीं। जिस भगति में देश काल,वस्तु की अपेक्षा न हो उसको ही सहज भगति कहते है। जिस भगति में मन वचन कर्म के निरोध–अनिरोध की अपेक्षा न हो उसे सहज भगति कहते है। यही सहज भगति की परिभाषा है। जिस भगति में भक्त और भगवान की स्मृति न हो, उसे ही सहज भगति कहते है। अरे। स्मरण भी तो एक बनावटी है। जिस भगति में अरे न हो, उसे सहज भगति कहते है। जिस भगति में अटक–खटक न हो उसे सहज भगति कहते है। जिस भगति में विधि–निषेध न हो उसे सहज भगति कहते है। तो ऐसी भगति "हमहिं कृपा करि देहु"। जिस भगति में देश काल की अपेक्षा न हो,क्योंकि जो सहज है उसको भी तो किसी की अपेक्षा नहीं हैं कि जहाँ चन्दन छिड़का जाय वही हो और जहाँ टट्टी पेशाब हो, वहाँ न हो ऐसी बात नहीं है। जो सदा है, सर्वत्र है, लबालब है, सहज होने के नाते वह इतना आसान है, इतना सरल है, इतना सहज है कि उसकी भी सीमा नहीं है।

गीता में भगवान ने कहा है कि :–

"तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च"।

अर्थात् युद्ध भी कर और मेरा स्मरण भी कर। वाह! युद्ध ऐसा काम, जहाँ सारथी, घोड़ो और अपनी रक्षा का नित्यध्यान रखना है। एक सेकण्ड की भी असावधानी हुई कि सब चौपट सब गया। ऐसी परिस्थिति में युद्ध भी कर और भक्ति भी कर। इससे मालूम होता है कि भगवान की भक्ति वह नहीं है। जो मन, बुद्धि, इन्द्रियों से हो, भगवान ने यह नहीं कहा हैं कि दिन भर तो युद्ध कर और फिर नहा धोकर कुश का आसन बिछाकर एक घण्टा ध्यान मग्न हो मेरा भजन कर।

इस तरह देश काल की अपेक्षा वाला भजन करने के लिए भगवान नहीं कह रहे हैं। सहज भगवान का भजन,सहज ही होगा, वहाँ कृत्रिमता का सर्वथा अभाव है।

वैकल्पित भगवान के स्मरण के लिए देश काल वस्तु की अपेक्षा पड़ती है और "मैं"आत्मा भगवान वैकल्पित नहीं हूँ,"मैं" सर्व विकल्पों का आधार हूँ, तो फिर "मैं"आत्मा का चिन्तन सर्वकाल में होता है। वैकल्पित का नहीं। मन वाणी का विषय वैकल्पित है। अवांगमनसगोचर सहज है, जहाँ मन वाणी का पूँजी पिटारा बन्द हो जाता है, वही भगवान आत्मा की सहज भक्ति है।

<u>दूसरी बात :–</u> जिस भक्ति के लिए मन निरोध अनिरोध न हो उसे सहज भक्ति कहते है। देखो– मन जब रूक जाता है। तब क्या "मैं"आत्मा भी रूक जाता हूँ। इस मन के रूकने को किसने जाना? उत्तर होगा–"मैं" आत्मा ने जाना और मन चला जाय इसको किसने जाना? इसको भी "मै" आत्मा ने जाना। मैं आत्मा तो वही का वहीं हूँ। चुप हो जाऊँ तब भी "मैं"हूँ और कुदारी (कुदाल) लेकर डोली (खेत) कोडूं (खोदूं) तब भी "मैं"हूँ। मुझ भगवान आत्मा का क्या बिगड़ना है

<u>तीसरी बात :–</u> जिस भगति में भक्त भगवान की स्मृति न हो, उसे ही सहज भक्ति कहते है, परवाना शमां में जाकर मिल गया, यह है सहज भगति।

जब नदी समुद्र में जाकर मिल गई तब अब नदी कहाँ रही, जब जीव भगवान में जाकर मिल गया। तब जीव कहाँ रहा और जब जीव नहीं तब भगवान कहेगा कौन। इस स्थिति में न भक्त रहा न भगवान रहा, जो रहा वही रहा, वह न भक्त है न भगवान। सन्तों का भगवान वैकल्पिक होता है। वैकल्पिक भगवान में लड़ाई झगड़ा है। बहुत पुरानी बात है। सन् 1939 में हमने वृन्दावन में चातुर्मास किया, एक बार वहाँ वैष्णवों में दो पार्टी हो गई और दोनों दल में खूब जमकर लड़ाईयाँ हुई, लाठियाँ और अस्त शस्त्र भी काम में लाये गये, खूब खून खराबियाँ हुई और अन्त में मुकदमा न्यायालय में पेश हुआ। जहाँ लाखों रूपयें बरबाद हुए। लड़ाई का मुख्य विषय था कि एक कहता था कि भगवान कृष्ण का मुकुट मूर्ति में बांई ओर झुकाकर रखो क्योंकि भगवान कृष्ण राधा के ईष्ट थे और राधा उनकी बांई ओर है। तब दूसरी पार्टी कहती थी कि नहीं, मुकुट मूर्ति में दाहिनी और ही झुकाकर रखी जायगी, बस बात केवल इतनी ही थी। न्यायाधीश ने जब यह प्रसंग सुना तो उनने फैसला दिया कि भगवान कृष्ण की मूर्ति में मुकुट न तो बांई ओर झुकाकर रखो और न दाहिने और झुकाकर रखो, बिल्कुल सीधे रखो।

भैय्या! अज्ञानता धर्म प्रेमियों की भी कैसी दुर्दशा करती है। मूर्तियों में भगवान राम मुकुट सीधा रखा जाता है। इसका रहस्य यह है कि भगवान राम सीधे और शान्त है और कृष्ण मुरली (बंशी) बजाते है, बंशी बजाने में सिर स्वाभाविक बांयी ओर झुक जाता है। परन्तु इसका विचार इन

भक्तों का कहाँ। स्वाभाविक भगवान सहज भगवान, इन विवादों से परे का भगवान है। जो सर्व मान्य है। सार्वभौम है जिसके लिए तृण से लेकर ब्रह्म तक किसी को भी कोई विवाद नहीं।

चौथी बात :– जिस भक्ति में अरे। न हो यह निषेधात्मक शब्द है, जिस भक्ति में आप सहित सारा चराचर जब वासुदेव है, तब "अरे" इस शब्द की गुंजाइश ही कहाँ?

उमा जे राम चरनरत, बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहिसन करहिं बिरोध।।

पांचवी बात :– जिस भक्ति में अटक खटक न हो उसे सहज भगति कहते है।

सबै भूमि गोपाल की, यामें अटक कहां?
जाके मन में अटक है, सोई भटक रहा।।
जहाँ अटक है, वहाँ खटक है और जहाँ खटक है, वही भटक है।

छठवी बात :– जिस भगति में विधि निषेध न हो, उसे सहज भगति कहते है।

विधि निषेध श्रुति शास्त्र की, मेड़ देत सब भेंट।
नारायण जाके हृदय, लागत प्रेम चपेट।।
प्रेमी को इतना होश कहाँ?

भगवान आत्मा को जान लेने पर ही ऐसी भगति मिलती है, यदि गुरू कृपा से, सन्त कृपा से, भगवान आत्मा को जान लिया है, तो अभी से भगवान का ध्यान, धारणा, मनन, चिन्तन, समाधि, कुछ मत करो। इस भक्ति को जान लेने पर मनुष्य कृत–कृत्य हो जाता है। यही भगवान की सहज भगति हैं और जो आत्मा को नहीं जाना है, उसे सिखाने को यदि ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी आ जाये, तब भी उससे करना–धरना नहीं छूट सकता। करना धरना तो स्वरूप ज्ञान के बाद ही बन्द होता है। "कर्म कि होंहि स्परूपहिं चीन्हे"

कुछ न करना, सुनने में तो बड़ा सरल लगता हैं। परन्तु यह उतना सुगम नहीं हैं। यह तो कृपा का फल हैं तभी तो माता शतरूपा ने कहा है कि :–

"हमहिं कृपा करि देहु"

सहज भगति अनभ्यास का फल है– अभ्यास का नहीं अर्थात् कुछ मत करो यही सहज भगति है। अनभ्यास आत्म समर्पण का पर्याय है,अभ्यास व्यक्तित्व का प्रतीक है,अपने "मैं" आत्मा को कुछ मानना ही व्यक्तित्व है। सन्त तुलसीदास जी विनय में कहते है :–

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार, जानै सोई जेहि बनि आई।।
जो जेहिं कला कुसलता कहँ, सोई सुलभ सुखकारी।।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहै गज भारी।।
ज्यो सर्करा मिले सिकता महँ, बल तैं न कोउ बिलगावै।।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवै निन्द्रा तजि जोगी।।
सोई हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्रवैत बियोगी।।

सोक, मोह, भय, हरष, दिवस, निसि, देस काल तहँ नाहीं।।
तुलसीदास यहि दसाहिन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

जहाँ तक मन वाणी का विषय है सब दृश्य हैं।
प्रश्न होता है :– किस तरह? देखो अनुभव करो– यह डण्डा दिख रहा है यह दृश्य हुआ। अब विचार जगत में आओ–यह जो डण्डा दिख रहा है वह विकल्प है या वस्तु है? जो सुनने में तो आवे,परन्तु ढूंढने पर न मिले उसे विकल्प कहते है। डण्डा सुन तो पड़ता हैं। परन्तु डण्डा खोजने से डण्डा नहीं मिलता,हाथ में लकड़ी ही लगती हैं। तब उत्तर हुआ कि डण्डा विकल्प है जो अस्तित्वहीन है, है ही नहीं। इस स्थिति में डण्डा न रहा। डण्डा को विकल्प कहो तब डण्डा नहीं और यदि वस्तु कहो तब भी डण्डा नहीं, डण्डा है ही नहीं। इसी तरह देह यदि विकल्प है तो देह नहीं और देह वस्तु है तो देह नहीं। बस,इसी तरह सारा संसार विकल्प है। जो दृश्य मान है। सब विकल्प है। जो है ही नहीं। यही उदर में दृश्यों को मेलना है। संसार कहानी है, प्रपंच कहानी है, जो सुनने में आवे परन्तु ढूंढने पर न मिले वह सब कहानी है। ढूंढने पर तो मैं ही मिलता हूँ। इसलिए सारा प्रपंच "मैं" ही हूँ। इस तरह सकल हृदय को उदर में मेलकर सो जाओ, परन्तु कैसे सोवो? अरे। निद्रा तजि सोवो।

जिसका दिल दिलवर में है,उसको कब आती है नींद।
करवटें लेते ही लेते,साफ उड़ जाती है नींद।।

इसी को योग निद्रा कहते है। इसी नींद में भगवान सोते है। स्वाभाविक निर्विकल्पता के बाद जो स्थिति आई यही योगियों की नींद है। योग निद्रा हैं। इसी योग निद्रा में जो हरिपद है, परमसुख है। उसको अनुभवै। परन्तु कौन?

"अतिशय द्वैत वियोगी"

अस्तित्व आत्मा पर जितने विकल्प हैं। उन सब विकल्पों के अभाव हो जाने पर सर्व का अस्तित्व खत्म हो गया और सर्व का अस्तित्व रह गया। जिसका मतलब है कि सर्व मान्यताओं का अस्तित्व खत्म हो गया और इन सर्व मान्याताओं का आधार अस्तित्व है। वह "मैं" आत्मा ही रह गया। "मैं" आत्मा पर ही तो सारे विकल्प हुए है। जिस प्रकार यदि सोना न हो तो आभूषण का विकल्प, मिट्टी न हो तो घड़े का विकल्प किस पर करोगे।

जिसके बिना जो नहीं होता वही उसका वास्तविक स्वरूप होता है। जो जिसको सिद्ध करता है। वह वही होता है। यह सिद्धांत है। डण्डे को लकड़ी सिद्ध करती है। बिना लकड़ी के डण्डा रह नहीं सकता। अतः डण्डे का लकड़ी वास्तविक स्वरूप है। इसी तरह किसी भी देश काल वस्तु से अपने आपको निकाल लो। उनकी सिद्धी ही नहीं हो सकती, इस तरह सर्व "मैं" ही हूँ। सिवा "मैं"आत्मा के अन्य भी नहीं। अब यहाँ विकल्प नहीं रहा कि "मैं" सूक्ष्म हूँ या स्थूल हूँ। परिछिन्न हूँ या व्यापक हूँ क्योंकि सब तो मिल गए, किसमें मिल गये? अपने आप "मैं"आत्मा में मिल गये, यही "सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवै निद्रा तजि योगी" का भाव है, यहाँ पर एकदम अपने आप निर्विकल्पता आ जाती है। यह निर्विकल्पता, निर्विकल्प की है। सब कुछ "मैं" हो जाने की यह निर्विकल्पता हुई, अब सब भगवान है। इसी में सोवो, अरे। सोना क्या?
स्थित होना। तब क्या अनुभव होता है? सोइ हरि पद अनुभवै परम सुख। यह अनुभव होता है। क्या है? सब कुछ "मैं" हूँ। मुझ आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं, यही मोह की निद्रा को त्यागकर

सोना है। अपने आपको जीव मानता यह स्वप्न है और जीव मानकर उसके धर्मों को अपने मन में मानना स्वप्नान्तर है और जब जाना कि "मैं" हूँ, तो यही जागना है। इस निर्विकल्पता में ही :– सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिशय द्वैत वियोगी की अनुभूति हैं। जो ज्ञान वैराग्य और वेदान्त के वैरागी हैं,वे लोग कहते हैं कि तुलसीदास जी तो ज्ञानी नहीं थे, भक्त थे, तो फिर क्या अज्ञानी थे। जो प्रत्यक्ष स्वरूप की अनुभूति करा रहे हैं।

जिस प्रकार स्वरूप अवस्था में स्वप्न का प्रपंच स्वप्न से भिन्न नहीं होता है, यहाँ पर एक बात और है कि सजातीय,सजातीय का मेल होता है। विजातीय का मेल नहीं होता। उसी तरह जागृत का प्रपंच जागृत अवस्था,जागृति से भिन्न नहीं होता। यदि प्रपंच का स्वरूप और हो और "मैं" आत्मा का स्वरूप और हो तब तो मेल नहीं हो सकता, क्योंकि पानी,पानी का मेल होता है। तेल और पानी का नहीं, इसी प्रकार यदि मैं आत्मा प्रपंच से सर्वथा भिन्न होऊं तब तो मेल नहीं हो सकता और जब प्रपंच ही "मैं" हूँ तो फिर मेल किसका। बस! ऐसी अनुभूति,ऐसा निश्चय ही उदर अर्थात् स्वरूप में मिलना है, तो फिर :– "सोइ हरि पद अनुभवै परम सुख"। मुझ आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं, इसका फल निर्विकल्पता और निर्विकल्पता का फल हरि पद परम सुख की अनुभूति। बस! यही सहज भगति है जिसे माता शतरूपा माँग रही है। देखो दिल को निर्विकल्पता करने के लिए कितना प्रयास है और जहाँ अपने आप में सबको मिला दिया तो, फिर एकदम निर्विकल्पता आ गई क्योंकि विकल्प की सीट तो कभी खाली होनी नहीं है, जब अनुभव हुआ कि मुझ आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है तो फिर न देह रहा, न मन रहा, न चित्त रहा, न बुद्धि रहा, न और कुछ रहा, यही निर्विकल्पता है। जो सहज भगति कब प्राप्त होती है।

"अतिशय द्वैत वियोगी"

अर्थात् अपने स्वरूप से एक तृण को भी भिन्न मत देखो। जिस समय काग भुसुण्डी को भगवान श्रीराम ने वर दिया उस समय का प्रसंग है :–

प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु, चिदानन्द संदोह।।

यदि यह दोहा समझ में आ जाय तो सारी रामायण समझ में आ गया। अयोध्या में राजा दशरथ के यहां भगवान राम आंगन में खेलते हुए रोटी खाते हुए जब उनके मुहं से रोटी का टुकड़ा जमीन में गिर पड़ता था। तब कागभुसुण्ड जी भी उनके पीछे–पीछे फिर रहे थे। झट उठाकर खा लिया करते थे।

लरिकाईं जहँ जहँ फिरहीं, तहँ तहँ संग उड़ाऊँ।
जुठनि परइ अजिर महँ, सो उठाई करि खाऊँ।।

यह काम जब कुछ देर चलना रहा और भुसुण्डी भी यह लीला देखते रहे तो उनके मन में भ्रम पैदा हो गया कि :–

प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु, चिदानन्द संदोह।।

तब भगवान राम हंसे, हंसना ही माया है। उनके हंसते ही भुसुण्डी उनके मुंह के द्वारा भीतर चले गये और वह उनके पेट के भीतर उसने अनेकों दशरथ, अनेकों कौशल्या अनेकों अयोध्या, अनेकों ब्राह्मण्ड लोक, ब्रह्मा शिव, अनेकों सूर्य, चन्द्रमा लोक पाल यम काल विशाल पर्वत और असंख्या

समुद्र नदी तलाब वन और भी नाना प्रकार की श्रृष्टि का विस्तार, देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य, किन्नर तथा चारो प्रकार के जड़ और चेतन जीव अरे कहा तक कहे :–

जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अदभुत देखउँ, बरनि कवनि बिधि जाइ।।

ये सब तो देखो परन्तु :–

भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति विचित्र हरियान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखिउँ आन।।

इस प्रकार वहाँ देखकर बाहर आया और अत्यन्त आनन्दित और पुलकित हो सजल नयन युक्त दीनता पूर्वक उनके चरणों में गिर गया तब प्रभु ने अपना कर कमल मेरे सिर पर रखा और भक्त वत्सल ने मेरा सम्पूर्ण दुख हर लिया और मुझ दास को दीन देखकर भगवान बोले :–

काक भसुण्डी मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि।।

भगवान ने भुसुण्डी को क्या–क्या मांगने नहीं कहा, अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ, दूसरी रिद्धियाँ, सम्पूर्ण सुखों की खान, मोक्ष, ज्ञान, विवेक, वैराग्य, विज्ञान अनेकों गुण जो मुनियों को भी दुर्लभ हैं, आदि सब कुछ मांग ला कहा, परन्तु उनने यही माँगा कि भगवान :–

अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगिस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव।।

भगवान उसकी यह याचना सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे कि अरे कौआ। तू बड़ा सयाना है। बड़ा चतुर है। भैय्या! तू ऐसा वरदान क्यों न माँगेगा, अच्छा तो सुन मैं तुझे यही वर देता हूँ। अब तुझे माया से उत्पन्न कोई भी भ्रम नहीं व्यापेगा। क्योंकि तुमने मुझे अनादि, अजन्मा, अगुण, गुणातीत और दिव्य गुणों की खानि जाना हैं। समस्त चराचर की आत्मा "मैं" हूँ मुझ आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं। यही अविरल भगति है। जिसे वेद शास्त्र श्रुति सन्त महात्माजन गाते हैं। परन्तु यह साधन से नहीं मिलता ।

"प्रभु प्रसाद कोउ पाव"

यह तो कृपा पर ही आधारित है। यह कृपा से ही प्राप्त होती है। इसी भगति पर दोहा है :–

चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारी।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि।।

भगवान की भगति मिल जाने पर चारों आश्रम और वर्ण के अभिमान का अपने आप त्याग हो जाता है। अर्थात् जिस भगति को पाकर मैं ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शुद्र हूँ, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी, सन्यासी हूँ और यही लक्ष्यपद है। अटल पद है। सहज पद है जिसे शतरूपा माँग रही है। वर्णाश्रमाभिमान, देहाभिमान पर अवलम्बित है और देहाभिमान, देहाभ्यास पर आधारित है। इसका स्वरूप सुनो –

जो चीज जैसी हो, उसे वैसी न जान कर कुछ का कुछ मान लेना यही अध्यास है। जैसे रज्जू के अज्ञान से रज्जू में सर्प का अध्यास होता हैं। इसी प्रकार स्वरूप "मैं" आत्मा भगवान के अज्ञान से अस्तित्व भगवान आत्मा "मैं" में ही देह का अध्यास होता है। देह मानकर फिर स्त्री हूँ, पुरूष हूँ, बालक, युवा, वृद्ध हूँ। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य हूँ, शुद्र हूँ। ब्रह्माचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी, सन्यासी हूँ, इत्यादि अभिमान होता है।हरि भक्ति को पड़ लेने पर अर्थात् जिसको माना था उसको जाने

लेने पर जितनी मान्याताएँ थी, देहादिक, वर्ण आश्रामादिक उसका त्याग हो जाता है। पहले अध्यास का त्याग होता हैं। उसके बाद अभिमान के सर्वथा त्याग के पश्चात् विशुद्धतत्व जो अविरल भगति, सहज भगति है वही रह जाती है।

सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवे निद्रा तज योगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिशय द्वैत वियोगी।।

भाई! मानसकार ने नींद को त्यागकर सोवै कहा है।

<u>प्रश्न होता है :–</u> कौन सी नींद?

मोह निशा सब सोव निहारा, देखहिं स्वप्न अनेक प्रकाश।

इस मोह रात्रि में दुनिया के जीव सो रहे है।

येहि पग यामिनि जागहिं योगी, परमारथी प्रपंच वियोगी।
या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।

भगवान कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन। संपूर्ण भूत प्राणियों के लिए जो रात्रि है उस नित्य शुद्ध बोध स्वरूप परमानन्द में भगवान को प्राप्त हुआ योगी पुरूष जागता है और जिस नाशवान क्षण भंगुर सांसारिक सुख में सब भूत प्राणी जागते है। तत्व को जानने वाले मुनि के लिए वह रात्रि है। उसमें वे सोते है। मोह निशा में योगी जागते है। कौन सा योगी?

परमार्थी और प्रपंच वियोगी योगी, अतिशय द्वैत वियोगी योगी।

<u>प्रश्न होता है :–</u> परमार्थी किसको कहते है?

राम ब्रह्म परमारथ रूपा, अविगत अलख अनादि अनूपा।
सकल विकार रहित गत भेदा, कहि नित नेति निरूपहिं वेदा।।

सारे चराचर का अस्तित्व "मैं" आत्मा हूँ। इस पद में जो स्थित हैं,उसे कहते है परमार्थी। तो प्रपंच वियोगी परमार्थी योगी, इस अविद्या की घोर रात्रि में जागते हैं। मोह रात्रि में सोता हुआ जीव स्वप्न देखता है कि मैं आता हूँ। जाता हूँ, सोता हूँ, बैठता हूँ, खाता हूँ, पीता हूँ, कर्ता हूँ, भोक्ता हूँ। सुखी हूँ, दुखी हूँ, धर्मी हूँ, अधर्मी हूँ आदि और जब जागता है। तब क्या अनुभव करता है कि "मैं" अजर अमर अजन्मा अविनाशी आत्मा हूँ, "मैं" जन्म–मरण, हर्ष शोक, दिवस निशि आदि द्वन्दो से परे हूँ, मुझमें ये द्वन्द नहीं है। "मैं" देशकाल से परे हूँ।

शोक माह भय हर्ष दिवस निशि, देशकाल जहँ नाहीं।
तुलसीदास अस दशाहीन, संशय निर्मूल न जाहीं।।

इस स्थिति में निर्विकल्पानुभूति हैं। जहाँ विकल्पानुभूति अर्थात् प्रपंच अत्यन्ताभाव हैं। यही निर्विकल्पतानुभूति ही "मैं" आत्मा हूँ। अब यहाँ पर शोक, मोह, भय, हर्ष, दिवस, निशि, देशकाल कुछ भी न रहा। जब तक यह पद प्राप्त नहीं कर लिया जाता तब तक संसय और भ्रम का नाश कदापि नहीं हो सकता। इसी भगति के बारे में माता पार्वती जी ने भगवान शंकर से प्रश्न किया था यह उत्तर काण्ड का प्रसंग है :–

नर सहस्त्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होई धर्म ब्रतधारी।।
धर्मसील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई।।
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई।।

ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ।।
तिन्ह सहस्त्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन बिग्यानी।।
धर्मसील बिरक्त अरू ग्यानी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी।।
सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया।।
सो हरिभगति काग किमि पाई। बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई।।

भैय्या! अब, "राम चरण रत गत मदमाया" समझो, राम चरण रत? यहाँ पर 'रत' शब्द का अर्थ है। आत्मानुभूति। अब रह गया। "गत मदमाया" जो माना जाय वह माया है और मानसकार अहंकार होना कि यह मैं हूँ, यह मद है। पहले अस्तित्व भगवान आत्मा "मैं" को देहमाना, देहा मानना ही माया है और देह मानकर वह मैं हूँ। ऐसा अभिमान होना यह–मद है।

"राम भगति रत" अर्थात् जब अपने स्वरूप आत्मा को जान लेता है। तब देह की मान्यता का त्याग हो जाता है। मान्यता अर्थात् माया के चले जाने पर साथ ही साथ पद अर्थात् अभिमान का नाश हो जाता हैं, इस तरह स्वरूप के बोध में माया और पद दोनों गत हो जाते है अर्थात् दोनों का त्याग हो जाता है। यही भगति है। पुराणों और शास्त्रों में जो भगति है। उसका नाम उपासना है। क्योंकि वहाँ भक्त और भगवान का भेद है। परन्तु यहाँ न भगति है। न भक्त है, न अपरा है। न परा है। क्योंकि और जो भक्ति है। वे सब साधन है। भक्ति के साधन ''कहौ बखानी'' ऐसा कहा गया है। न कि "भगति कहौ बखानी" कहा। लोग जो भगति करते है। वे करने की है और से भगति पाई जाती है। मानसकार स्पष्ट तो कह रहे हैं कि –

।।"प्रभु प्रसाद कोउ पाव"।। "पाव" अर्थात् पाते है।

सो हरि भगति काक किमि पाई, यहाँ भी "पाई" अर्थात् पाना बताया गया, करना नहीं कहा गया।

भक्ति स्वतंत्र सकल सुख खानी, बिनु सत्संग न पावहीं प्रानी।।

यहाँ "पावहिं" अर्थात् पाना ही कहा है।

श्री रघुनाथ भगति श्रुति गाई, राम कृपा काहू इक पाई।।

राम कृपा, संत कृपा, गुरू कृपा से कोई–कोई इसे पाई जाते हैं कहा।

भगति तात अनुपम सुख मूला, मिलहिं जो संत होहि अनुकूला।।

यहाँ भी मिलहिं अर्थात् पाना ही बताया अरे। कहाँ तब प्रमाण दिया जाय। माता शतरूपा यह भगति माँग रही है, जिसको प्राप्त कर लेने पर सब कुछ मिल जाता है, फिर कुछ पाना शेष नहीं रहता। माता शतरूपा कहती है किः–

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरण सनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, हमहिं कृपा करि देहु।।

अब " सोइ निज चरण सनेह" पर सुनो :–

सन्त तुलसी, मीरा और सूरदास ये सगुण–निर्गुण के उपासक नहीं थे, भगवान के उपासक थे। सन्त देश में सगुण–निर्गुण का भेद कहाँ।

सन्त तुलसी यदि सगुण राम के उपासक होते तो निर्गुण–सगुण का भेद मानते, परन्तु रामायण में कही पर भी भेद के उल्लेख का नामों निशान नहीं है।

देखो बालकाण्ड की चौपाइयाँ :–

आदि अन्त कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा।।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।

यह ब्यापक ब्रह्म का अर्थात् निर्गुण का निरूपण हुआ। अब वे सगुण ब्रह्म में मिलाते हैं–

जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान।।

फिर देखो–

सब कर परम प्रकाशक जोई, राम अनादि अवधपति सोई।

अब दूसरे प्रसंग पर आवो–

जनकपुर में जब विवाह का सम्पूर्ण कार्य विधिवत सम्पन्न हो जाता है और जब विदा का समय हो जाता हैं। तब जनक श्रीराम के पास आकर कहते है :–

राम करौ केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा।।
करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोहु मोहु ममता मदु त्यागी।।
ब्यापक ब्रह्मु अलखु अबिनासी। चिदानंदु रिनगुन गुनरासी।।
मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी।।
महिमा निगमु नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई।।

यह ब्यापक निराकार ब्रह्म का निरूपण हुआ।

देखो– अब सगुण (साकार) ब्रह्म में मिलाते है, वे कहते हैं कि हे राम। ऐसे जो आप है। सो मेरी आँखों के सामने प्रत्यक्ष खड़े है–

नयन बिषय मो कहुँ भयउ, सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ, भएँ ईसु अनुकुल।।

इस तरह साकार सगुण ब्रह्म में लाकर विलीन कर दिया, अब कहो, कहाँ है सगुण–निर्गुण का भेद। सगुण और निर्गुण का भेद, अज्ञान देश में है। भगवान को सगुण–निर्गुण देखना, अज्ञान देश का विकल्प है, जिसने भगवान को नहीं जाना, उसको ही सगुण–निर्गुण का भेद है।

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी।।

यह भगवान शंकर माता पार्वती से कह रहे है, तब जो मन वाणी का विषय नहीं है। उसके सम्बन्ध में क्या कहा जा सकता है कि वह सगुण है या निर्गुण हैं। इसलिए यह कोई न कहे कि हम राम चरण के पुजारी है। पहले बोध प्राप्त कर लो, उसे जान लो, तब बाद में चरणों में प्रेम होगा। भगवान शंकर माता पार्वती से फिर कहते है :–

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें।।

भगवान देखा जाता है, जाना जाता है और संसार सुनने की चीज हैं। कहानी सुनी जाती है।

सुने हुए भगवान की जो उपासना करते है, वह सब कहानी है। वहाँ बनावटी स्नेह है। बनावटी (कृत्रिम) स्नेह में आँख कान बन्द करना पड़ता है और जाने हुए भगवान में सहज स्नेह होता है। वहाँ कुछ करना नहीं पड़ता वह स्वाभाविक होता है। क्योंजी। क्या कामी पुरूष माला लेकर एकान्त में कामिनी का ध्यान करने बैठता है। सन्त तुलसी ने अन्त में क्या कहा है?

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभही प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर लागहु मोहि राम।।

जैसे कामी का सहज स्नेह कामिनी पर लोभी का सहज स्नेह धन में होता हैं। उसी प्रकार भगवान का सहज स्नेह हो। इसके लिए कृपा की जरूरत है। तभी तो कहा गया कि :–

"हमहिं कृपा करि देहु"

इसलिए सबसे पहिले भगवान को जानो। भगवान को जान लेने पर सगुण,निर्गुण का भेद नहीं रहेगा और तभी निज चरण में सहज स्नेह होगा। भगवान सगुण है या निर्गुण है, ऐसा है, वैसा है, यह सब कल्पना है, भगवान न तो सगुण है न निर्गुण है। न ऐसा है न वैसा है, वह तो जैसा है वैसा ही है। भगवान देश में इन सभी कल्पनाओं का सर्वथा अभाव है, इसका प्रयत्क्ष प्रमाण आत्मानुभूति है। यावानहं।

यों ही मथुरा प्रयाग में भूला फिरे, तुझे अपनी तो यार खबर ही नहीं।
वो तो घट ही के पट में निहां है मियाँ, कुछ दूर दराज यफर ही नहीं।
इक काबे को जाता है कहता हुआ, यहाँ नूर का को मजहर ही नहीं।
चलो चलिए मदीने को कोई कहें, यहाँ जात हकीकी का घर ही नहीं
कोई काशी का अजम करै योंही, कहीं शिव आता नजर ही नहीं।
आवो देखें द्वारिका कोई कहै, किसी और जगह मिले हरि ही नहीं।
हर संग में नूर निहां उसका, कुछ तूर पै खास हसर ही नहीं।
वो तो घट ही के पट में निहां है मियाँ, कुछ दूरो दराज सफर ही नहीं।
उसी नूर की सारी है जल्वागिरी, वजूज उसके तो किधर ही नहीं।
हर जर्रे में जर्रे फिसां है वही, कोइ और इधर या उधर ही नहीं।
वो ही चौदह तबक में समाया हुआ, तेहि उससे कोई पैकर ही नहीं।
ल लगाएं जहाँ का है जिक्र यहीं, वो ही हकक है अगर या मगर ही नहीं।
वो अजों समा में पे एक सिफत, असगर ही नहीं अकबर ही नहीं।
वो तो घट ही के पट में निहां है मियाँ, कुछ दूरो दराज सफर ही नहीं।
ईसाई में जो ईसाई या हैं, ईसाई वो तो मसहर ही नहीं।
इस्लाम में भी इस्लाम सा है, बांधे दीन की कोई सिफर ही नहीं।
हां हिन्दू में हिन्दू सा दीख पड़े, वले हिन्दू पने का असर ही नहीं।
हर जात में जात उसी की है, पर जात में जात उसी की है।
वह दहुला शरीफ सिफत उसकी, कभी उसका हुआ हम सर ही नहीं।
वो तो घट ही के पट में निहां है मियाँ, कुछ दूरो दराज सफर ही नहीं।

वो तो इलम ही इल्म का दायरा है, कहीं उसका कुतर या वतर ही नहीं।
उसे ही नूर ही नूर समझ दिल में, अखतर ही नहीं खावर ही नहीं।
तू तो शब्द से रास्ता बूझले कुल, हक और कोई यावर ही नहीं।
"निर्भय" हर श्वाँस में बोलता है, सोहं सोहं मुनकिर ही नहीं।
वो तो घट ही के पट में निहां है मियाँ, कुछ दूरो दराज सफर ही नहीं।।

यदि "मैं" आत्मा हिन्दू मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, सगुण, निर्गुण, वर्णी, आश्रमी, स्त्री, पुरूष आदि होउ तब भगवान भी से सब हो और वह भगवान नहीं जो "मैं" आत्मा से भिन्न है अथवा मुझे आत्मा से अभिन्न है। या भिन्नाभिन्न है। प्रश्न होता है। तब क्या है, तो भैय्या! बस। यही हैं। क्या? बस। यही है। सब गप्त हो जाव, तर्क का अत्यन्ताभाव हो जहाँ पर भगवान को सगुण मानोगे तब मन जायगा। निर्गुण मानोगे तब मन जायगा। भिन्न–भिन्नाभिन्न मानोगे, तब मन जायगा, मगर यह जो अनुभूति है, उसमें क्या है? कुछ नहीं। हाँ तो फिर यही तो 'बस' है, जो जानने समझने के लिए, पहले अपने आप निज को जानों,तब,निज चरण सनेह होगा।

माता शतरूपा ने पहले सोइ सुख फिर सोइ गति फिर सोइ भगति इसके बाद में सोइ निज चरण सनेह माँगा है। देखो अभी जो अनुभूति कराई गई वह न भिन्न है। न अभिन्न है और न भिन्नाभिन्न है। यहाँ सर्व विकल्पों का अत्यन्ताभाव है, यहाँ न शरीर का विकल्प है न मन का, न विषय का और न सारे प्रपंच संसार का।

भक्त और भगवान के भेद में,भगवान के चरण कमल में सहज सनेह कैसे हो सकता है। पिता और पुत्र में एक दूसरे के प्रति बनावटी स्नेह नहीं होता, सहज स्नेह होता है। पत्नी का प्रेम पति में सहज होता है। बनावटी नहीं होता क्योंकि यहा भेद का अभाव है। ऐसे ही भक्त और भगवान में भेद का जहाँ अभाव है वहीं सहज स्नेह है और यदि भेद है तो सहज स्नेह होगा कैसे? श्रुति कहती है "देवो भुत्वा देवं यजेत्"। जिस देव का पूजन करना है। पहले वह तुम स्वयं हो जाओ परन्तु भैय्या। यह बनावटी नहीं है। जब भगवान के चरणों में सहज स्नेह होगा तब स्नेह का क्या मतलब। यह समझो :–

स्नेह का अर्थ होता है। प्रेम। यह प्रेम जहाँ पर सहज होगा, वहाँ पर ध्यान,धारणा, समाधि,स्मरण,चिन्तन इन भावों का सर्वथा अभाव हो जायगा। इन भावों के अभाव का भाव ही सहज स्नेह है, हम बहुत आगे निकल गए है। खूब समझो,क्योंकि भैय्या। स्मरण,ध्यान,धारणा, चिन्तन,भजन में बनावटी रहता है। वहाँ देश काल की अपेक्षा होती है, मगर हमको तो हृदय में सहज स्नेह की स्थापना करनी है।

विषयी साधक सिद्ध सयाने, त्रिबिध जीव जग बेद बखाने।

विषयी अर्थात् कर्मकाण्डी, साधक अर्थात् उपासक और सिद्ध सयाने अर्थात् ज्ञानी से सब

सोह न राम प्रेम बिनु ज्ञानू, कर्णधार बिनु जिमि जल बानू।

इसका नाम है सहज सनेह। सहज सनेह में भक्त भगवान, ज्ञान अज्ञान, ब्रह्म, जीव सब समाप्त हो गये, इसका ही परिणाम है,सहज सनेह।

देखो "सहज सनेह " का स्वरूप समझो :–

तुम्हारा कोई पुत्र यहाँ से सैकड़ो मील दूर अन्यत्र है तब क्या उस पुत्र के लिए एकान्त में बैठकर तुम माला जपते रहते हो, ध्यान, स्मरण, समाधि लगाते हो। ये सब कुछ नहीं करना पड़ता और

स्नेह बना रहता है। पति कहीं रहे, पत्नी कहीं हो। परन्तु स्नेह बिना कुछ साधन के स्वाभाविक बना हुआ है। बस। यही सहज सनेह का स्वरूप है। इसी प्रकार भगवान के चरणों में सहज स्नेह हो। भगवान का पूजन पाठ करना, यह दुनियाँ दिखाने के लिए की जाती है। यह चाल चलन बनाना है। बाहर की अलामते संसार देखता है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।

भगवान कृष्ण कहते है कि हे अर्जुन। जो पुरूष मेरे अनन्य चित्त से स्थित हुआ। सदा ही निरंतर मुझको स्मरण करता है। उस निरंतर मुझमें युक्त हुए योगी के लिए मैं सुलभ हूँ। अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता है। इस तरह भगवान आत्मा सुलभ हैं। तब जो सहज है। उसमें बनावटी स्नेह कैसे होगा। सहज में तो सहज स्नेह ही हो सकता हैं। अब जो सनेह करेगा, वह भी सहज,बस। सब एक थैली के चट्टे बट्टे हो गये। तुम लोग सब गृहस्थ हो,घर द्वार परिवार को छोड़कर यहाँ आये हो, परन्तु कुटुम्ब परिवार के सहज स्नेह को तुम जानो अथवा वे जाने।

शमां के रूबरू आकर, शमां में जलते परवाने।
मुहब्बत अन्दरूनी को, शमां जाने या परवाने।।

सहज स्नेह का यही स्वरूप है। माता शतरूपा चरण सनेह माँग रही है, क्यों?

भाई! कितना भी बोधवान हो परन्तु शास्त्र गुरू और भगवान के प्रति, कृतज्ञभाव रखना यही बोध का फल हैं और यही प्रमाद का काल है। देखो– यहाँ पर जितने पढ़े लिखे या बिना पढ़े लिखे,सामने बैठे हो, तुम्हे क्या बोध हुआ है, इसके साक्षी तो तुम स्वयं हो, मगर अब आकर आरती, पूजा, प्रणाम आदि करते हो और प्रसाद लेते हो, यही तो सहज स्नेह हैं और हमारी यही कामना है कि तुम्हारे सहज सनेह में भेद न हो, सन्त महापुरूषों के हृदय में सहज सनेह होता है। हम ब्रह्म, तुम ब्रह्म, सर्व ब्रह्म, तब कौन किसकी पूजा करे और कौन किसको प्रणाम करे और यह सब क्यों किया जाय? बस यही प्रमाद का स्वरूप है और सहज सनेह हो। इस प्रमाद का नाशक है। भरतजी ने वरदान माँगा है :–

अरथ न धरम न काम रूचि, गति न चहउँ निरबान।
जनम–जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन।।

यह सहज सनेह ही तो है। आत्मनैष्ठिक बोधवान का पुनर्जन्म नहीं होता,परन्तु भरत ने कहा है कि न अर्थ न धर्म न काम और न मोक्ष चोहिए। क्योंकि इन्ही चारो झंझतो में जीव फंसा रहता है और बिना बोध के ये चारो नहीं जाते। जब तक ये मानता रहेगा कि मैं संसारी जीव हूँ। तब तक कामना रहित नहीं हो सकता यह असम्भव है। निष्काम तो केवल भगवान आत्मा ही हैं। जीव हृदय कभी निष्काम हो ही नहीं सकता। अरे यार! जीव की यही जिन्दगी है कि वह कामना करता रहे। निष्काम हुआ कि जीव मरा। फिर तो भगवान हो गया। नर न रहा। नारायण हो गया। जीव चाह पीता है। जीव कभी अचाह हो ही नहीं सकता। सारा विश्व उसको भगवान क्यों कहता है। भगवान क्यों मानता हैं। उसकी पूजा क्यों करता है। क्योंकि वह चाह नहीं पीता। अचाह है। इसलिए ही वेद, शास्त्र, गीता, रामायण, भागवत, उपनिषद, सन्त महात्माजन तथा हम स्वयं उन्हे भगवान कहते है। क्योंकि उसमें व्यक्तित्व का अभाव है, अपने आपको कुछ भी नहीं मानता, अपने आपको कुछ भी मानना यही व्यक्तित्व है। भगवान यह नाम तो उनके भक्तो ने

रखा है। इसीलिए सारा विश्व उनकी पूजा करता हैं।

व्यक्तित्व का अभाव, अचाह पद में निहित है। जब कुछ चाहोगे, तब तुम्हे अपने आप को कुछ न कुछ मानना ही पड़ेगा। अपने आपको पुरूष मानकर पति मानोगे। तब पत्नी मिलेगी, स्त्री मानकर पत्नी मानोगे, तब पति मिलेगा, पुत्र मानोगे तब पिता पावोगे, पिता मानोगे तब पुत्र मिलेगा। अचाह हो जाने पर व्यक्तित्व का अभाव हो जाता है। यही भगवान हो जाना है। फिर तो चाहे कपड़ा पहिनो, चाहे नंगा रहो, बैठे रहो चाहे मटको वाह। ऐसा अचाह पद मुबारक हो खुदा बख्शे। व्यक्तित्व इतना सहज है कि अपनी–अपनी धारणा के अनुसार सारा संसार उसकी आराधना करता है।

भगवान कहते भी तो है कि :–

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।

हे अर्जुन! जो जैसा भजता है। मैं भी उसको वैसा ही भजता हूँ, इस रहस्य को जानकर। बुद्धिमान मनुष्य सब प्रकार से मेरे मार्ग के अनुसार वर्तते है। व्यावसायिक जगत में भी देखो। लोग कहते है अरे भाई। ये बड़े सहज स्वभाव के हैं। इन्हे जो मरजी आवे कह लो ये बुरा नहीं मानते। इसी प्रकार भगवान भी सहज है। उसे जो जिस भाव से भजता है। उसी भाव से वह उसे प्राप्त करता है। भगवान किसी को कुछ नहीं कहते कि यह उचित है और यह अनुचिज है।

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरण सनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहिन प्रभु , हमहिं कृपा करि देहु।।

अब "सोइ विवेक" पर सुनो :–

माताजी कौन सा विवेक माँग रही है। भगवान श्रीराम ने उत्तरकाण्ड में भरत से कहा है कि भाई भरत –

सुनहु तात माया कृत गुन अरू दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक।।

माया से किया हुआ गुण (यहाँ पर गुण शब्द का अर्थ विवेक होगा, क्योंकि आगे अविवेक आया हैं) अर्थात् माया से उत्पन्न हुआ गुण अर्थात् अज्ञान इन दोनों का नहीं देखना चाहिए और यदि "उभय देखिय" अर्थात् दोनों देखे जा रहें है। तो यही अविवेक हैं, अज्ञान है। तात्पर्य यह है कि दो को नहीं देखना यही परमहंस दृष्टि हैं। देखो –

दृष्टि तीन प्रकार की होती है– 1.) कागदृष्टि, (2) हंसदृष्टि, (3) परमहंस दृष्टि

1)– गुण का त्याग और दोष का ग्रहण यह कागदृष्टि है।

2)– दोष का त्याग और गुण का ग्रहण यह हंसदृष्टि है।

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार।।

3)– न तो गुण ही देखे और न दोष ही अर्थात् दोनों को न देखे, यह परमहंस दृष्टि हैं।

इसको ही भगवान दृष्टि कहते है। भगवाना की दृष्टि में न गुण है न दोष है, सब भगवान ही हैं, क्योंकि जब दो हो तब न गुण दोष दिखाई दे।

भगवान उसे कहते है जो एक से और एक उसे कहते है जिससे भिन्न दूसरा न

हो, एक के बिना यदि दूसरा सिद्ध हो जाय, तब तो दो है। जिसका नाम दो है। एक ही है। जो अनेक कहा जा रहा है। सिवा उस एक के अन्य कुछ है ही नहीं तब कहाँ रहा दोष और कहाँ रहा गुण। अरे। यही विवेक है इसलिए गुण यह कि "उभय न देखिय" इसका अर्थ हुआ कि विवेक यही है। कि दोनो का नहीं देखना और यदि देखा जा रहा है, तो यही अविवेक है।

ऊपर कहा जा चुका है कि दृष्टि तीन प्रकार की हैं, अब इनके रहने की जगह सुना–

1) काग दृष्टि :–

यह शहरों मं होती हैं। शहर वाले ताव के रहते है कि कोई दोष मिलें, तो परन्तु उसको प्रचार किया जाय और इस भावना से वे जहाँ प्रेरित हुए, तो वे अपनी भावना के अनुसार, कुछ न कुछ दोष ढूंढ निकालते है। बस इनका दोष देखना ही काम है। इसके सिवाय यहां, यदि दो चार हंस दृष्टि के लोग मिल भी गये, तो यह सिद्धांत नहीं अपवाद है।

2) हंस दृष्टि :–

यह गांवों में होती है। यहाँ के लोग गुण को ही ग्रहण करते हैं और दोष को छोड़ देते है। यहाँ यही दो चार काग दृष्टि वाले कोइ मिल भी गये, तो यह अपवाद है, सिद्धांत नहीं।

3) परम हंस दृष्टि :–

अपने "मैं" आत्मा को, अपने आप जैसा मैं हूँ, वैसा ही हूँ जानना, यह भगवान का निश्चय है। अर्थात् यह पद भगवत पद है, अब इस पद से देखो, अगर तुमको दूसरा दिखाई दे तब "मैं" जैसा हूँ, वैसा नहीं हूँ तब तो फिर "मैं" ऐसा हूँ। "मैं" आत्मा जैसा हूँ। यही आत्मपद है। परमहंस पद है, मायातीत पद है। परमपद है।

अब इस पद में स्थित होकर प्रपंच को देखो, यदि प्रपंच की प्रतीती होती हैं तो "मैं" जैसा हूँ, न होकर "मैं" ऐसा हूँ अर्थात् दूसरा कब दिखेगा जब अपने आप को "मैं" ऐसा मानूंगा, दोनो का अनुभव कर लो, माया का भी और मायातीत का भी।

"मैं" ऐसा हूँ, ऐसा मानना ही माया है और इस माया में ही दूसरा दिखता है। तब गुण और दोष दिखने लगते है और जब जान गया बोध हो गया। तब दूसरा न दिखेगा। "मैं" आत्मा का ही आत्मा रह जायगा,बस। इसी का नाम विवेक है, मगर सहज न छोड़ना, यह सहज शब्द शुरू से चलता आ रहा है। सहज सुख, सहज गति, सहज भगति, सहज चरण सनेह, सहज विवेक और सहज रहनी, जिसे माता शतरूपा माँग रही है। जो विवेक कृत्रिम न हो। बनावटी न हो, वह विवेक मुझे दीजिए। विषय समझो :–

अब सहज पना को लखो– मैं हूँ, ऐसा जब तुम कहते हो, तब क्या अपने आपको कुछ मानकर कहते हो?

उत्तर है :– नहीं।

प्रश्न होता है :– किस तरह?

देखो– जब तुम दरवाजा बन्द करके भीतर रहते हो। तब कोई अन्य व्यक्ति बाहर से दरवाजा खटखटाता है। तब तुम उससे भीतर से ही कहते हो, कौन है?

बाहर वाला जवाब देता हैं "मैं" हूँ। बस, यही सहज विवेक हैं। अरे। मैं हूँ का कुछ मायने मतलब

हो, तब बताया जाय। परन्तु जब मैं हूँ, इस उत्तर से तुम सन्तुष्ट नहीं होते और बार–बार पूछते हो,कि कौन हो? तब वह बाहर वाला सहज से कृत्रिमपने में आकर कहता है,कि मैं अमुक हूँ। राम दत्त हूँ, शिवदत्त हूँ, आदि।

यह अमुक पना ही कृत्रिम है, बनावटी है, अब इस उत्तर के साथ ही, उसके गुण दोष सामने आ गये और विचार उठने लगा कि फाटक खोलूँ अथवा नहीं। जब मैं हूँ यह सहज उत्तर दिया गया था। तब उसके प्रति कोई विकल्प नहीं था। मैं अमुक भाव के आते ही, विकल्पों का गुण दोष का जाल बिछ गया, यही माया.....है। यही माया है,इस आमुक भाव (मान्यता) को ही माया कहते है और इसी में गुण और दोष हैं–

"सुनहु तात माया कृत,गुन अरू दोष अनेक" तब "उभय न देखिये" कब? जब उभयन देखने वाले की देख लिया तब।

गुण और दोष इन दो का देखने वाला एक है कि दो है?

उत्तर है :– एक है। तब फिर उस एक को देख लेने पर,दो कहाँ? जब तक उस एक को नहीं देखा, नहीं जाना, तभी तक दो दिखाई देता है? इसलिए दिखाई देता है कि वह एक नहीं दिख रहा है। यह दो दिखना एक को न देखने का फल है, बस यही सहज विवेक है।

जो दिखता है । वह दो में दिखता है। या एक में दिखता है?

उत्तर है :– एक में दिखता है, तो वह दो है कि एक है? एक ही है। तब फिर दिखने वाला और देखने वाला दो है अथवा एक है?

उत्तर है :– एक है, माता शतरूपा कहती है– सोइ विवेक "मैं" हूँ, यह भगवत पद हैं और "मैं" अमुक हूँ, यह माया है। भगवान आत्मा को जहाँ कुछ माना,कि 'माया' आ गया।

अमुक भाव, मान्यता, माया का आधार "मैं" हूँ बिना "मैं" के अमुक भाव नहीं, बिना "मैं" के अमुक भाव, किया किस पर जायगा। अतः इसका आधार, रक्षक, पति, कारण, अधिष्ठान "मैं" हूँ, इस "मैं" भगवान आत्मा के ज्ञान में ही माया से छुटकारा मिलता है, इसके लिए अन्य साधन की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसा कौन है। जो "मैं" हूँ इसको न जानता हो अर्थात् "मैं" हूँ इसको सभी जानते है। हाँ वैकल्पिक भगवान का जानना कठिन है, मगर भगवान जैसा है। वैसा ही उसको जानना सहज है। "मैं" हूँ इसको कोई बता दो कि "मैं" कैसा हूँ। निःसंकोच निर्भय होकर कह दो कि "मैं" ऐसा हूँ।

स्वामी रामतीर्थ जब अमेरिका से भारत आये तब हृषिकेश से 42 मील दूर गंगा किनारे टेहरी नामक स्थान पर रहा करते थे। एक दिन उनके पास युनिर्व्हसिटी का एक विद्यार्थी जाकर कहने लगा कि स्वामी जी। हमें भगवान का दर्शन करा दो? स्वामी राम ने कहा– भाई! तुम अपना परिचय पत्र एक कागज पर लिखकर हमें दे दो, हम उस परिचय पत्र को भगवान के पास ले जाकर रख देंगे, ताकि वे तुम्हें दर्शन दे सकें, क्योंकि मिलने वालों को अपना परिचय पत्र देना आवश्यक होता है।

तब उस विद्यार्थी ने कागज पर अपना नाम गांव लिखकर स्वामी जी को दिया। स्वामी जी ने उसे देखकर उससे कहा भाई! यह तो तुम्हारे शरीर का पता हैं, तुम्हारा पता यह नहीं हैं, तुम कौन हो?

लोग तुम्हारे शरीर को इस नाम से पुकारते हैं यह तुम्हारा नाम है। तुम स्वयं कहते हो, कि मेरा नाम, मेरा शरीर, तुम्हारे इस कथन से जान पड़ता हैं कि तुम न नाम हो और

न शरीर हो, क्योंकि 'मेरा' यह शब्द सम्बन्ध सूचक है। जिस चीज से अपना सम्बन्ध रहता है। उस चीज के लिए मेरा कहा जाता है। मेरा कहने वाला उन चीजों से सर्वथा भिन्न होता है। अतः सिद्ध हैं कि वह तुम नहीं हो। अपना सच्चा पता लिखकर दो कि तुम कौन हो? गलत पता देने पर दर्शन दुर्लभ है।

बस, फिर क्या था जिज्ञासा से पूर्ण वह विद्यार्थी स्वामी जी के चरणों को पकड़ लिया और श्रद्धापूर्वक विनती करने लगा कि भगवान। "मैं" कौन हूँ? इसका ज्ञान कराइये। स्वामी जी ने उस विद्यार्थी पर कृपा की और इस सत्संग क्रम ये ही उनकी कृपा के फलस्वरूप वह विद्यार्थी कृतार्थ हो गया, उसे भगवत दर्शन हो गया।

अरे यार! भगवान के दर्शन में क्या देर है। भीतर से सच्ची तड़प और व्याकुलता भर हो जाय फिर तो वह मिला मिलाया है।

प्रश्न होता है :– "मैं"हूँ यह विवेक तो सबको है, तब फिर आप किसका विवेक कराते है?

उत्तर है :– हम विवेक का विवेक कराते है। यह कृपा साध्य हैं, विवेक तो है ही "मैं" हूँ। इसको किसी विद्यालय, कॉलेज, युनिर्व्हसिटी में पढ़ने गये थे। या किसी पोथी पत्र में लिखा है। उसको पढ़कर जाने हो, नहीं। "मैं" हूँ का ज्ञान सहज है। सबको है। हाँ, "मैं" ऐसा हूँ। इस ज्ञान का पठन पाठन होता है, मगर "मैं" हूँ। इसका संसार में न पठन है और पाठन हैं। "मैं" ऐसा हूँ। इसका ही विवेचन, इसकी ही व्याख्या चारों वेद पुराण, शास्त्र, रामायण, गीता, भागवत, ऋषि, सन्त महाजन करते है, "मैं" जैसा हूँ। इसका विवेचन जब "मैं" स्वयं ही नहीं कर सकता, तब विश्व में किसकी ताकत हैं। जो कर सके, इसीलिए, वेद नेती–नेती कहकर भाग जाते है। इसलिए भी "मैं" ही भगवान हूँ। क्या भगवान को अपने "मैं" का ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी के पास कहीं जाना पड़ता हैं। यह सहज ज्ञान ही सहज विवेक हैं। सहज तुमने कहा नहीं, कि सर्व का अत्यन्ताभाव हो गया।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।।

भगवान कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन। मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि अन्त और मध्य भी मैं ही हूँ।

भाई! "मैं" हूँ। इसका विवेक, ज्ञान अथवा अनुभूति के लिए कुछ नहीं करना पड़ता, इस निरूपण में, न प्रक्रिया है, न सिद्धांत, मन, वचन, कर्म द्वारा, यम, नियम, प्राणायाम, ध्यान, धारण, सामाधि। जो भी साधन किये जाते हैं। वह सब "मैं" ऐसा हूँ। इसके लिये किये जाते है। न कि "मैं" के लिए। अरे। कुछ करो तब "मैं" आत्मा हूँ। यह सहज विवेक हर काल, हर अवस्था में, हर एक की स्वाभाविक है। इसका अनुभव "मैं" हूँ। इस विवेक में टिक कर करों। अरे यार! टिके तो पहिले से ही हो, मगर "मैं" को कुछ मानकर टिके हो, जानकर नहीं।

"मैं" अमुक हूँ। यही मानकर टिकना हैं। मानकर टिकने से माया दिखती हैं और जानकर टिकोगे तो भगवान दिखेगा। तुम्हारी जो मरजी हो देख लो।

प्रश्न होता है :– स्वामीजी! "मैं"हूँ। इसमें कैसे टिकूँ?

उत्तर है :– भाई! जैसे अभी तक टिके हो वैसे टिको। "मैं" अमुक हूँ। इसमें टिकने के लिए किसी स्कूल कॉलेज, महाविद्यालय गये थे? अमुक हूँ। इसमें टिकने से पुण्य, पाप, सुख, दुख, गमनागमन, सारा प्रपंच है। तभी तो तुम कहते हो कि प्रपंच बड़ा दुखदायी है। तो फिर अब प्रपंच

मत बनाओ, "मैं"हूँ। इसमें टिक जाओ, यह भगवान में टिकना है। "मैं" अमुक हूँ। इस माया में तो आज तक टिके रहे। इसमें टिकने से क्या मिला है। इसके साक्षी तो तुम स्वयं हो। अब "मैं" हूँ, इसमें टिककर देखो। दोनों का अनुभव यहीं कर लो "मैं" हूँ।

इस मंजिल पर खड़े होकर देखो, "मैं" ही दिखता हूँ। या और कुछ और अपने को कुछ मानकर तो आजतक देखते ही रहे हो, जहाँ माया दिखती है। दोनों पहलू बताये गये, जो तुम्हारी मर्जी हो चुन लो।

बस! यही सहज विवेक है, जिसे माता शतरूपा माँग रही है।

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरण सनेह।
सोइ विवेक सोइ रहिन प्रभु, हमहिं कृपा करि देहु।।

अब "सोइ रहनि" पर सुनो जिसे माता शतरूपा जी माँग रही हैं :–

वह रहिन, जो बनावटी न हो, सहज हो। अरे यार। जब "मैं" हूँ। यह विवेक सहज है। तब "मैं" हूँ की रहनि भी तो सहज ही होगी।

ठाढ़े बैठे, परे उताने कह कबीर हम वही ठिकाने।

"मैं" हूँ। यह सहज ज्ञान सबको है। परन्तु ज्योही "मैं" क्या हूँ? कैसा हूँ? कितना हूँ? यह विकल्प किया, कि सहजपना अर्थात् "मैं" भगवान आत्मा से अलग हो गया। "मैं" पर जो भी विकल्प होता है वह सब माया है, अमुक भाव होते ही मान्यता (माया) आ गई। इस भाव का अभाव ही सहज रहनी है। इससे अलग मत हाओ। बस! यही ठोस वेदान्त है, मिश्रित नहीं। जो जैसा है, उसको वैसा ही लखाया जा रहा हैं। जो चीज जैसी हैं उसको वैसा ही देखना भगवान देखना हैं।

लकड़ी जैसी हो उसको वैसी ही देखना यही लकड़ी देखना है। लकड़ी डण्डा तो है नहीं, कुर्सी, टेबिल, तख्त आदि तो वह है नहीं, क्योंकि से सब तो उस पर विकल्प हुए हैं। जो अभाव रूप हैं ही नहीं।

डण्डा, कुर्सी, टेबिल, तख्त, की सहज रहनि, लकड़ी है, इससे अलग होने पर ही , सहज पना खोते ही, माया अमुक भाव आ गया। सोना जैसा है, उसको वैसा ही देखना सोने की सहज रहनि हैं। अरे यार! संसार को नहीं देख रहे हो। भगवान देख रहे हो, आभूषण नहीं देख रहे हो। सोना देख रहे हो बस। यही सहज रहनि हैं।

<u>प्रश्न होता है :–</u> कि जब भगवान देख रहा हूँ तो फिर मैं भगवान देख रहा हूँ यह भान क्यों नहीं होता?

<u>उत्तर है :–</u> भाई! यह सहज रहनि का विवेचन हो रहा है, दृश्य खोलकर समझो, हम तुमको भगवान जानकर कह रहे है। अगर भगवान के सिवा दूसरा कोई देखने वाला हो, तब तो भान हो, कि मैं भगवान देख रहा हूँ। अरे! जब देखने वाला भगवान ही हैं। तब भान किसको होगा? भान तो दो में होता है। एक में भान कैसा? "मैं" अमुक है। इस पद से नहीं "मैं" हूँ। इस पद से अनुभव करो। यही सहज रहनि है। यहाँ पर ज्ञानी, अज्ञानी, ब्रह्म, जीव, बन्ध, मुक्त, श्रोता, वक्ता, सर्व का अत्यन्ताभाव हैं। सब समाप्त हो गये।

भगवान याज्ञवल्क्य कहते है कि हे गार्गी :–

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति
तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं श्रृणोति
तदितर इतरभिवदति तदितर इतरं मनुते
मदितर इतरं विजानाति यत्र वा अस्य
सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं जिघ्रत्तत्केन कं
पश्येत्तत्केन कं श्रृणुयात्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन
कं मन्वीत तत्केन कं विजानीयात्। येनेदं सर्वं
विजानाति तं केन विजानीयाद्विज्ञातारमरे केन विजानीयादिति।।

जब द्वैत के समान होता है, तब दूसरा दूसरे को सूंघता हैं, तब दूसरा दूसरे को सूंघता हैं, तब दूसरा दूसरे को देखता हैं। तब दूसरा दूसरे को कहता है तब दूसरे दूसरा को सोचते हैं। तब दूसरा दूसरो को जानते है और जब इसका सब आत्मा ही हो गया। तब किससे किसको सूंघे, किससे किसको देखे, किससे किसको सुने, किससे किसको कहे, किससे किसको सोंचे, किससे किसको जाने, जिससे यह सब जाना जाता है, इसको किससे जाने? अरे! जानने वाले का किससे जाने?

यह व्याख्या सहज रहनि की है और "मैं" पद से , सहज पद से हो रही है, "मैं" हूँ इस नारायण पद से देखो, तो ज्ञानी अज्ञानी पाप पुण्य बन्ध मोक्ष जगत ब्रह्म कहाँ? फिर देखना सुनना कहना बोलना कहाँ। न कोई कह रहा है न कोई सुन रहा है। यह न समझो कि मैं तो स्वामीजी के पास ज्ञान प्राप्त किया हूँ। ज्ञान प्राप्त कर रहा हूँ इसलिए मैं ही कृतकृत्य हूँ। अरे! यह सारा विश्व सहज पद में सहज रहनि में रह रहा है।

भलो भयो हरि बीसरो, सिर से टली बलाय।
जैसे थे वैसे रहे, अब कछु कहो न जाय

क्या देखा? कुछ नहीं। क्या पाया? कुछ नहीं। क्या जाना? कुछ भी नहीं। जैसा पहले था, वेसा ही अब भी हूँ और वैसा ही, आगे भी रहूँगां जब माना था देह हूँ , तब भ "मैं" था, जब माना था जीव हूँ, तब भी "मैं" था, जब माना ब्रह्म हूँ तब भी "मैं" ही हूँ। जब माना था तब क्या बिगड़ा और न माना था तब क्या मिला? कुछ नहीं।
"जैसे थे, वैसे रहे"। बस! यही सहज रहनि है और यहीं पर साप्ताहिक ज्ञान यज्ञ की पूर्णाहूति है। अब कुछ देर कीर्तन कर लो.....

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे,
हे नाथ नारायण वासुदेवः .....।।

ओम पूर्ण मदः पूर्ण मिदं, पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्ण मेवावशिष्यते।।
ओम शान्तिः। शान्तिः।। शान्तिः।।।

(समाप्त)